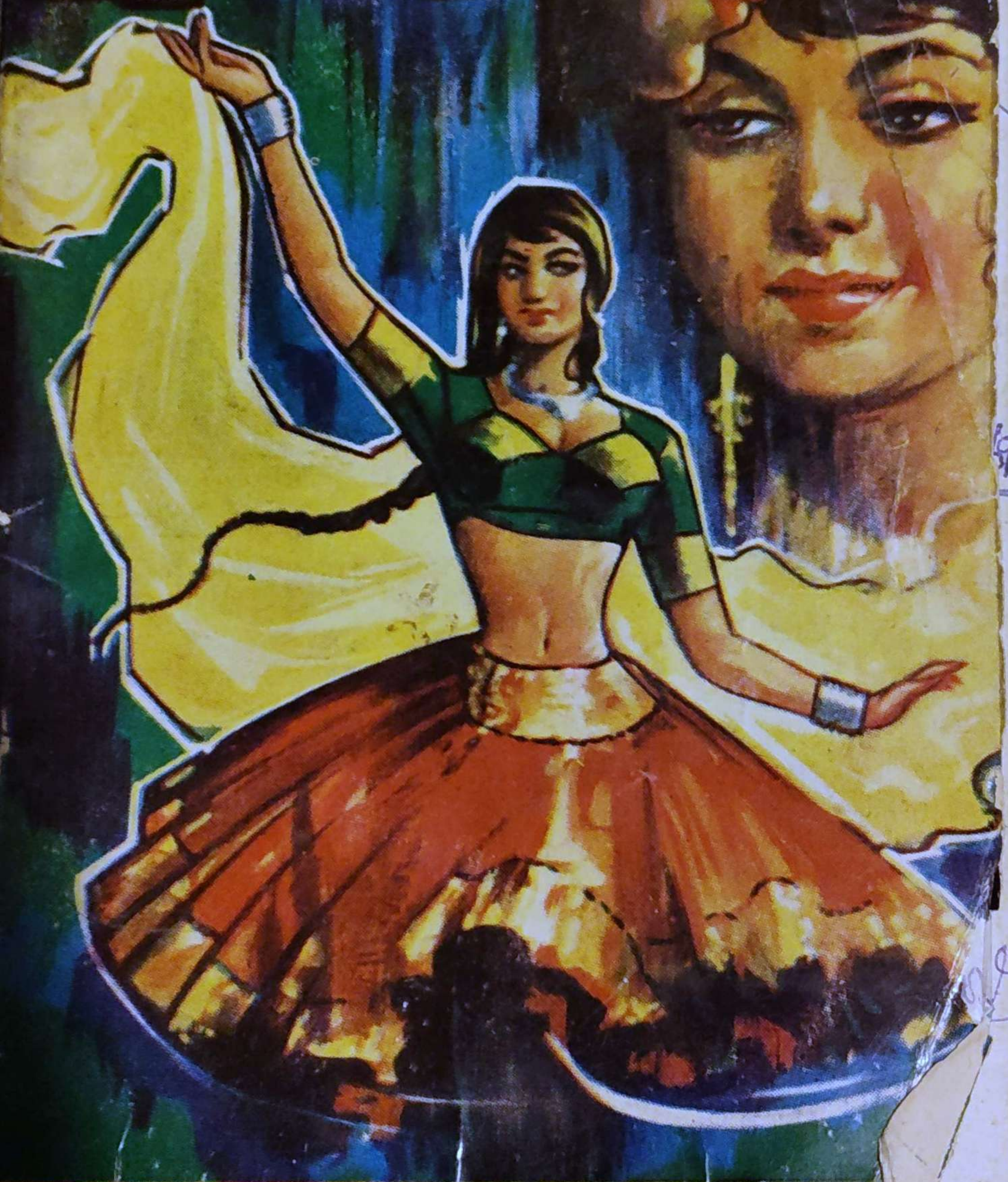
कुशवाहा 'कान्त'

नागिन



जय माँ भाग्यशाली जय माँ सरस्वती सदा सहायक हो माँ

साधना का बन्धन तोड़कर, वासना के आवेग से अन्धी बनी हुई पुजारिन, आज देवता का दासत्व छोड़-कर, यौवन की दासी बन बैठी थी। सघन अन्धकार ने झिलमिलाती आँखें फाड़कर, उस उन्मत्त देवदासी का नग्न-नृत्य देखा।

सुधीर कुमार यादव
Azamgarh

9305817969

"मुझे विचलित करके अब तुम पीछे नहीं हट सकते.... निष्ठुर ! तुमने मेरी युगों की तपस्या छीन ली...मेरा अचल हिमालय आज डोल उठा है... धतूरा पी-पीकर मैं जिस वासना को भूल बैठी थी, उसे तुमने मदिरा पिलाकर जागृत कर दिया।"

9305817969

Sudhir Kumar Yadav

मूल्य—पन्द्रह रुपया



कुशवाहा कान्त

नागिन

© सजल कुशवाहा
प्रकाशक—
भारत पाकेट बुक्स
कबीरचौरा (जालपा देवी रोड)
वाराणसी—२२१००१ (यू० पी०)
वितरक—
चिनगारी प्रकाशन—
सीके० ६४/५ कबीरचौरा (जालपा देवी रोड)
वाराणसी–२२१००१ (यू० पी०)
दूरभाष—६६१५८
मुद्रक—
चिनगारी प्रेस
सीके० ६४/५ कबीरचौरा (जालपा देवी रोड)
वाराणसी–२२१००१ (यू० पी०)

अभी मैं जवान हूँ।

और जवानी के दिनों में जो-जो हसरतें दिल के परदे पर उभरा करती हैं, उनसे मैं परेशान हो उठता हूँ कभी-कभी। अभिलाषाओं का अन्त नहीं, तमन्ना की इन्तहा नहीं। चारों ओर एक-सी मस्ती, एक-सी खुशी, एक-सी चुलबुलाहट नजर आती है। दिल बेकरार हो उठता है...

किसे चाहूँ, किसे प्यार करूँ, किसे दिल दूँ, किसे अपनाऊँ?—कुछ समझ में नहीं आता।

जवानी का आलम, अपने सीने में तूफान छिपाये आता है और शैथिल्य बिखेर कर चला जाता है। बुढ़ापे के दिन जब आते हैं तो लगता है जैसे यौवन एक सपना था— नींद में आया और जागृति में चला गया। रात्रि में सृष्टि हुई और दिन में विनाश। ऐसा भी कोई सपना कि आँख खुलते ही गायब...

मगर मैं हमेशा बुढ़ापे की ही बात क्यों सोचा करता हूँ। अभी तो जवान हूँ मैं, और दिल की गहराई में हजारों अधूरे अरमान भरे पड़े हैं; फिर वृद्धावस्था की जर्जरता का प्रश्न क्यों उभर आता है मेरे मन में?

मैं मन को रोकना चाहता हूँ परन्तु तूफान के पीछे का विनाश—जवानी के बाद का बुढ़ापा, रह-रहकर मेरी नजरों में साकार हो उठता है।

मैंने साढ़े सत्ताईस साल की अपनी इस जिन्दगी में जो-जो दृश्य देखे, वे क्या कभी भुलाये जा सकते हैं? मैं शरीर से जवान हूँ, आँखों में लाल-लाल डोरे हैं, चाल में शराब का नशा

है मगर अनुभव का प्रश्न जहाँ आता है, वहाँ मैं बूढ़ों से भी बढ़कर हूँ।

बचपन में मैं सुखी था। पिताजी थे और मैं—और रुपयों से भरी हुई कई तिजोरियाँ भी थीं। दस-बारह आलीशान मकान किराये पर चलते थे। चाहता तो पिताजी के मरने के बाद आराम से बैठकर खाता और स्त्री-बच्चों में तबीयत बहलाता रहता।

मगर इन्सान का सोचा हुआ कभी हो सका है?

बीस साल की अवस्था हुई तो पिताजी चले गये, स्वर्ग-यात्रा को। मैं अविवाहित था और रास्ते से भटकाने के लिये धन भी था, मित्रों की जमात भी। सो शराब की नदी बह चली मेरे सामने। सौन्दर्य का अम्बार लग गया मेरे समक्ष और मैं विस्मृत-सा आँखें मूँदकर विनाश की ओर चलता रहा। धन कोई हिमालय तो है नहीं कि एक ही जगह पड़ा रहे। वह तो रेलगाड़ी की तरह चलता है--आज यहाँ तो कल वहाँ। और दो साल बाद देखा कि मैं एकदम कंगाल हो गया हूँ। धन ने साथ छोड़ा तो मित्र भी रूठ बैठे। गोद में लेटने वाली वेश्यायें, आँख फेरकर दूसरी ओर देखने लगीं। हलक में जाने वाली शराब पैसे के बिना गूलर के फूल-सी बन गयी।

आज पाँच साल से यों ही दिन गुजार रहा हूँ। पतन का गर्त्त मैंने देखा है और उत्थान की सीमा भी। पहले रुपये लुटाता था आज रुपयों के लिये तरसता हूँ। धन के अभाव ने भरी जवानी में मेरी कमर तोड़ दी है।

मैं जवान हूँ और कंगाल भी। इतना कंगाल की एक कप चाय पीने के लिये इस समय मेरी जेब में एक आना भी नहीं है।

रेलगाड़ी में बिना टिकट के ही सफर कर रहा हूँ। माल गोदाम की तरह मुसाफिरों से डिब्बा भरा है। मगर कोई मुझे एक आना भी देने वाला नहीं—और दिल है कि रह-रहकर चाय पीने के लिए ललक रहा है।

सोचता हूँ कि सामने वाली बर्थ पर बैठे हुए इन वृद्ध सज्जन से भीख माँग लूँ——एक आना तो वे दे ही देंगे !

मगर जीवन में कभी किसी से माँगा नहीं, तभी हाथ केवल काँप कर रह गये ।

और इन सज्जन के साथ, जो एक गोरी गोरी पन्द्रह साल की लड़की है, वह रह-रहकर मेरी ओर देख लेती है ।

शायद भिखारी जैसे मेरे वस्त्रों को देखकर उसे आश्चर्य हो रहा है अथवा मेरी दयनीय दशा देखकर वह सोच रही है कि दुनिया में भी कैसे-कैसे निर्धन हैं ! चाहे जिस कारण से हो मगर उसके हृदय में मेरे लिए एक उत्सुकता जरूर है——एक आश्चर्य अवश्य है ।

जब कभी उसकी काली-काली पुतलियाँ मेरे शुष्क नेत्रों से मिल जाती हैं तो उनमें मैं अपने लिए एक दर्द पाता हूँ, एक कसक, एक उत्पीड़न पाता हूँ । सोचने लगता हूँ मैं कि इस अपरिचित युवती की आँखों से जिस सहानुभूति की वर्षा हो रही है, वैसी मैंने कहीं भी नहीं पायी !

धन लुटा कर, वेश्याओं का यौवन खरीदकर भी मैंने उनकी आँखों में वह भाव नहीं देखा ।

अब रेलगाड़ी हाँफती हुई आकर एक स्टेशन पर खड़ी हो गई है ।

वृद्ध सज्जन अपनी बेटी से पूछ रहे हैं—"रमा बेटी ! चाय पियोगी !..."

बाँसुरी जैसा स्वर मुझे सुनाई पड़ता है——"हाँ पिताजी !..."

और एक कुल्हड़ चाय गोरे-गोरे हाथों में आ गई । पतले-पतले होंठ चुस्की लेने लगे परन्तु मैं कितना विवश हूँ इस समय...

चाय भी नहीं पी सकता । केवल दूसरों को पीते देख सकता हूँ, मगर देखने से कहीं भूख मिटी है ?

दिल कहने लगा——माँग लो इस लड़की से जूठी चाय । मधुर होठों से लग कर चाय की मिठास बढ़ गई होगी....मगर

दूसरे ही क्षण फिर अपने आप पूछा कि मर सकता है। किसी का जूठा खाने से तो मर जाना अच्छा है।

लड़की ने मिट्टी का खाली कुल्हड़ बाहर फेंक दिया। हाथ की पतली चूड़ियाँ खनखना उठीं—जमीन की खाली पर गिर कर कुल्हड़ फूट पड़ा, बिखर गया।

जैसे मेरे सीने पर किसी ने पत्थर दे मारा हो। कुत्ते से भी बदतर हो गया हूँ मैं—किसी का जूठा भी न ले सका।

गाड़ी ने सीटी दी—शायद गार्ड ने झंडी भी दिखाई होगी, जिसे मैं देख न सका। देखा तो केवल इतना ही खिड़की के पास से अनेकानेक दृश्य गुजरने लगे हैं गाड़ी चल पड़ी है।

और अब एक टिकट-चेकर भी उसी डिब्बे में आ गया। यमदूत को देखकर मैं मरने-सा लगा। झूठ-मूठ जेब टटोलता रहा।

"कहाँ है तुम्हारा टिकट !...." यमदूत मेरे सर पर गरजा।

सभी मेरी ओर देखने लगे हैं। जैसे मैं चुल्लू भर पानी में डूबता जा रहा हूँ कि सर उठाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती।

"शाला ! तुम्हारा बाप का गाड़ी है, जो बिला टिकट चलने सकता है"—बंगाली यमदूत ने ऐसी भाषा में कहा, जो न हिन्दी ही थी न हिन्दुस्तानी।

और मैं चुपचाप सोचने लगा कि चलो, यह गाली ही दे ले तो अच्छा है—अपना क्या बिगड़ता है ? मेरी तो पोशाक ही ऐसी है, जिसे देखकर लोग भिखारी समझें।

मगर यमदूत तो मेरी जान लेने पर तुला हुआ था। उसने लोहे के पंच से मेरा सर ठकठकाया, जिससे चोट तो लगी मगर मैं चुप ही रहा।

वृद्ध सज्जन को कुछ दया आई।

बोले—"क्यों परेशान करते हैं बेचारे को..."

"अरे महाशय, इन शालों की बात बहोत पिछानता है हम.... इसका गाँठ में दस बीश टोका जरूर होने सकता..." कहकर

यमदूत ने धड़ाधड़ मेरे सर पर हाथ चलाना शुरु कर दिया।

जवानी कसक कर रह गई। शक्ति कुलबुलाने लगी। जी में आया कि उठाकर इस निशाचर को गाड़ी से बाहर फेंक दूं फिर न जाने क्या सोचकर चुप बैठ गया। धन के बदले जूते खाना मंजूर था मुझे।

इसी बीच उस लड़की ने अपने पिता से कुछ कहा।

वृद्ध सज्जन तुरन्त बोले—"उसे मारिये मत, मैं रुपये देता हूं..."

और रुपये लेकर, रसीद का एक टुकड़ा मेरे हाथों पर रख, वह यमदूत दूसरी ओर चला गया। मेरा हृदय वृद्ध सज्जन और उनकी बेटी के प्रति कृतज्ञता से भर उठा।

और अब भी देखता हूं कि वह सौन्दर्यमयी रमा, वैसी ही दृष्टि से मेरी ओर देख रही है।

"तुम इलाहाबाद जाओगे?"—वृद्ध सज्जन ने मुझसे पूछा।

"हाँ! .."

"वहीं रहते हो!"

"हाँ!..." मैंने कहा।

"टिकट लेकर क्यों नहीं चले?"

उनके प्रश्न के उत्तर में एक करुण मुस्कुराहट खिंच उठी मेरे ओठों पर। जैसे वृद्ध सज्जन को उनके प्रश्न का उत्तर मिल गया। रमा ने एक ठण्ठी साँस ली, जिसे केवल दिल ने देखा।

"मैं भी इलाहाबाद चल रहा हूँ"—वृद्ध सज्जन बोले—"आज... एक जमाने के बाद...एक युग के पश्चात् .."

मैंने लक्ष्य किया कि वृद्ध की आवाज में एक दर्द है, शायद किसी पिछली घटना के स्मृति-स्वरूप।

"आप पिछली बार कब इलाहाबाद आये थे?"—पूछा मैंने।

"जब तुम्हारी तरह जवान था..."

इस बार वृद्ध की आवाज का दर्द और बढ़ गया था, जिसने

मुझे आश्चर्य में डाल दिया। मैं चुप होकर बैठा रहा। कभी-कभी रमा की ओर देख लेता था। उसी प्रकार रमा भी मेरी ओर आकस्मिक ढंग से देखती जा रही थी।

इलाहाबाद का स्टेशन नजदीक आ गया। सभी परिचित वस्तुएँ दिखाई पड़ रही थीं। यहाँ के हर एक ईंट-पत्थरों से मेरी पुरानी जान-पहचान थी। रेलगाड़ी प्लेटफार्म में घुसी।

वह कुलियों का सरदार रामलाल खड़ा है। मुझे अच्छी तरह जानता है वह।

और वह अपने आफिस से सर निकाले हुए, असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर गुप्ता बाबू झाँक रहे हैं।

मुझसे वह कहते हैं—"कौशल, तुम अपने को सम्हालते क्यों नहीं ?"

और मैं कैसे बताऊँ कि सम्हाल सकना अब मेरे वश की बात नहीं रही ?

*

अब गाड़ी खड़ी हो गई है।

मैंने उन सज्जन का सूटकेस उठा लिया और सब लोग प्लैट-फार्म पर उतर पड़े।

वह !—वह सामने जो मोटा-सा खम्भा दिखाई पड़ रहा है और जिसके नीचे एक पागल बुढ़िया बैठी हुई ध्यानपूर्वक रेल-गाड़ी की ओर देख रही है—

तो इस बुढ़िया का भी इतिहास वैचित्र्य से भरा है। लोगों के कथनानुसार यह बुढ़िया उस समय जवान थी, जबकि मैं पैदा भी नहीं हुआ था। और ऐसी जवानी थी उसकी कि सारा शहर पागल था उसके पीछे। शहर की नामी वेश्या थी वह और अपने जहरीले आकर्षण के कारण 'नागिन' नाम से मशहूर थी।

मगर प्रेम का शोला उसके भी दिल में भड़का और वह बरबाद हो गई। आज वह पागल है। हमेशा प्लैटफार्म पर, उसी

खम्भे के नीचे बैठी रहती है। हर गाड़ी को ध्यानपूर्वक देखती है—शायद उस पर से उसका प्रेमी उतरे। जवानी से बुढ़ापे तक की उस मंजिल में, चलते-चलते थक कर चूर हो पड़ी परन्तु निराशा में प्रकाश नहीं हो पाया ?

तो यह बुढ़िया भी मुझे जानती है।

मुझे देखकर चिल्लाती है—"दूर रहना !...मैं नागिन हूँ... डँस लूंगी तो उठ न सकोगे...."

और ऐसा वह उन बच्चों से भी कहा करती है, जो उसे घेरकर व्यर्थ परेशान करते हैं।

"चलिये !...बाहर चलिये !..." मैंने वृद्ध सज्जन से कहा।

उसी समय वह पागल बुढिया चिल्ला पड़ी—

"दूर रहना...मैं नागिन हूँ ..डँस लूंगी तो उठ न सकोगे..."

कुछ बच्चे बुढ़िया को चिढ़ा रहे थे और वह चीख रही थी।

मैंने देखा—बुढ़िया का स्वर सुनकर वृद्ध सज्जन एक बार काँप उठे। उन्होंने उस ओर देखा। बुढ़िया पर उनकी दृष्टि पड़ी। मैंने लक्ष्य किया कि उनके पैर काँप रहे हैं।

"चलो...जल्दी चलो..." जब उन्होंने कहा तो उनकी आवाज भी काँप रही थी।

समस्या मेरे लिये जटिल होती जा रही थी। हम लोग बाहर की ओर चले। बाहर आते-आते वृद्ध सज्जन ने अपने को संयत कर लिया।

"कहाँ जायेंगे आप ?—" पूछा मैंने।

"सेठ शरदकुमार के यहाँ—" उन्होंने कहा।

"ओह !..." मैं हँसकर बोला—"मैं तो उन्हीं के बच्चों को पढ़ाता हूँ"

वृद्ध सज्जन ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा। सोच रहे थे वे—रमा भी शायद सोच रही थी—कि यह भिखारी क्या पढ़ा-लिखा भी है ? क्या दूसरों को पढ़ा भी सकता है ?

मैंने एक तांगा किया।

तीनों आदमी सेठ शरदकुमार की कोठी पर आये।

सेठजी मुझे देखते ही बोले—"अरे कौशल बाबू, तुम इन लोगों को कहाँ पा गये...."

मेरे लिये बाबू का सम्बोधन, एक बड़े सेठ के मुख से सुनकर उन वृद्ध सज्जन को कम आश्चर्य नहीं हुआ और रमा तो मेरा नाम सुनकर चौंक पड़ी। शायद वह मेरा नाम जानती थी, अथवा उसने मेरी कृतियाँ पढ़ी होंगी।

मेरे मित्र कहा करते थे—"कौशल ! तुम साहित्य-जगत के सबसे जाज्वल्यमान नक्षत्र हो...."

और मैं सोचता था कि यह दुनिया भी कितनी पागल है कि शराब पीकर जो कुछ मैं उगल देता हूँ उसे ही वह साहित्य कहती है। फिर भी प्रकाशकों ने मेरी बीसों पुस्तकें छापी थीं और बीसों मकानों के मालिक बन बैठे थे और मैं ज्यों का त्यों था। एक प्याला चाय, एक पेग शराब भी ठीक से नहीं मिल पाती थी मुझे। मैंने देखा—वृद्ध सज्जन और रमा कुर्सियों पर बैठ गये हैं। सेठजी भी बैठे हैं। मैं भी बैठा हूँ और रमा भेदक दृष्टि से मेरी ओर देख रही है।

नाश्ता आ गया। हम लोग तश्तरियों से उलझ पड़े। खाने-पीने के मामले में मैं सँकोची नहीं हूँ। कभी मुफ्त का खाना मिल जाता है तो सोचता हूँ कि एक घण्टे भर पहले चाय भी मिलनी कठिन थी और अब यह मिठाई और नमकीन—कैसी विडम्बना है !

सेठ शरदकुमार मुझे जानते हैं ! मेरे पतन की कहानी उन्हें मालूम है और मैं यह भी जानता हूँ कि उनके हृदय में मेरे लिये कुछ जगह है। सो वे वृद्ध सज्जन से मेरा परिचय कराने लगे। मेरा सारा इतिहास ही उलट कर रख दिया उनके सामने। मैं लज्जा से मरा जा रहा था।

सेठजी कह रहे थे—"ये चाहें तो सम्हल सकते हैं परन्तु

लापरवाही इनका साथ नहीं छोड़ती....नहीं तो हिन्दी के इतने बड़े लेखक की यह दुर्दशा ?—इसके अतिरिक्त ये चार विषयों में एम० ए० भी हैं...."

सुनकर उन वृद्ध सज्जन को मेरे प्रति करुणा-सी हुई।

और रमा की आकर्षक पुतलियाँ तो जैसे मेरे पैरों पर गिरकर कह रही थीं--"मेरे मन-मन्दिर के देवता ! धन्य हो तुम...."

जब सेठजी मुझे उन वृद्ध सज्जन का परिचय कराने लगे—

"ये है मेरे मित्र ठाकुर उदय प्रताप सिंह...मधुरिया ग्राम के जमीन्दार....और यह है इनकी बेटी रमा...इण्टरमीडियेट में पढ़ने आई है यहाँ... और ये इसे पहुँचाने आये हैं..."

जमीन्दार !—

तो ये जमीन्दार हैं ?

मैं जमीन्दारों से घृणा करता हूँ और यह बात जानते हैं सेठ शरदकुमार; इसीलिये वे पुनः बोले—

"इन्हें वैसा जमीन्दार मत समझना कौशल ! इनकी जमींदारी की आय दो लाख सालाना थी परन्तु जब जमीन्दारी-प्रथा के विनाश की आवाज उठी तो इन्होंने स्वयं ही अपनी सारी जमीन किसानों के नाम लिख दी...इस समय ये मामूली काश्तकार है...."

और मेरा मस्तक अपने आप ही उस महान् आत्मा के समक्ष नत हो उठा।

मैं चलने लगा तो सेठजी ने कहा—

"देखो कौशल ! कल से बच्चों को पढ़ाने जरूर आना....अब यह रमा भी यहीं रहेगी, इसे भी पढ़ा दिया करना...."

दूसरे दिन से मैं रमा को भी पढ़ाने लगा।

और पढ़ते-पढ़ाते हम लोगों ने एक दूसरे के हृदय भी पढ़ लिये।

बूढ़े ठाकुर तीन दिन तक रहने के बाद चले गये और मैं अपनी दिनचर्या में इतना तल्लीन हो गया कि ठाकुर साहब के हृदय में कोई गुप्त वेदना भी है, इसे एकदम भूल बैठा।

हमारे और रमा के दिल जो मिले तो जबानें खुल गईं।

एक दिन रमा ने पूछा—"आप इतना छिपकर क्यों रहते हैं ?..."

प्रश्न मेरी समझ में नहीं आया।

बोला मैं—"नहीं तो; छिप कर कहाँ रहता हूँ...."

"मेरे कहने का मतलब यह है कि आप अपने को छिपाते क्यों हैं ?"—रमा ने कहा।

"छिपाता तो नहीं मैं !"

"छिपाते कैसे नहीं ?"—बोली वह—"अन्तर में इतनी कला और शरीर पर कूड़े जैसे वस्त्र लपेटे रहते हैं..."

"रमा !..." मैंने एक ठंढी साँस ली—"तुम नहीं जानती कि मैं कितना कंगाल हूँ; मैंने धन लुटाकर अनुभव खरीदा है..."

"आप पहले से क्यों नहीं सम्हले ?..."

"तुम उस समय नहीं थी मेरे पास, नहीं तो सम्हल जाता मैं !"—मैंने कहा।

सुनकर रमा का मुख लज्जा से लाल हो गया।

यह सच था कि मैं आजकल एक दूसरी ही दुनिया में पहुँच गया था।

रमा का प्रेम पाकर मैं सब बुराइयों से दूर हट चुका था।

शराब छूट गई थी—वेश्याओं के कोठे मुझे उलाहना दे रहे थे।

और मैं था कि हजार हसीन तितलियों को छोड़कर, बेले की एक कोमल कली कलेजे से लगाये बैठा था।

अब मेरी फटी-फटी पोशाक में सफेदी और नवीनता आ गई थीं, मुँह साफ रहने लगा था, बालों पर सुबह-शाम कंघी दौड़ने लगी थी।

और दशहरे के लगभग जब ठाकुर साहब पुनः प्रयाग आये तो मुझे बदला हुआ देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ।

मैं नहीं जानता था कि सेठजी मेरे और रमा के प्रेम से अव-

गत हो चुके हैं और उन्होंने सारी बातें ठाकुर साहब को खोलकर लिख दी हैं।

उस दिन शाम को मुझे यह मालूम हुआ, जब हम और ठाकुर साहब अकेले एक कमरे में बैठे थे।

"कौशल !...." ठाकुर साहब बोले—"तुम्हारे और रमा के विषय में मुझे सेठजी ने सब कुछ लिख भेजा था...मैं प्रसन्न हूं कि तुम सुधर गये—मैं सुधारवादी तबीयत का आदमी हूं, अतः तुम्हारे और रमा के विवाह में मुझे कोई एतराज नहीं..."

और मैं हाथ में चाँद पकड़कर चुप बैठा रहा। हर्षावेग से कुछ बोल ही न सका। जैसे खुशी के आलम ने जबान पकड़ ली हो।

दशहरे और दीवाली के उपलक्ष में रमा का कालेज बंद था, दो सप्ताह के लिये। सो ठाकुर साहब, रमा के साथ मुझे भी ले चले अपने गाँव को।

स्टेशन पर आये तो वही पागल बुढ़िया !–मैं उस ओर जाने लगा तो ठाकुर साहब ने मुझे रोका और दूसरी ओर ले चले।

डिब्बे में बैठा तो मुझे फिर सन्देह ने धर दबाया।

ठाकुर साहब इस पागल बुढ़िया से डरते क्यों हैं ? और वह पगली इन्हें देख, ठठाकर हँस क्यों पड़ी थी और बाद को रोने क्यों लगी थी ?

अवश्य इसमें कोई भेद है।

सोचा मैंने कि अवसर आने पर पूछूंगा ठाकुर साहब से।

सो एक दिन अवसर आ ही गया। रमा के गाँव आये आज चार दिन हो चुके थे। इस बीच ठाकुर साहब अत्यन्त पीड़ित दिखाई पड़ते थे।

उस दिन ठाकुर साहब अपनी बैठक में अकेले ही बैठे थे। उनके हाथ में कागज का एक टुकड़ा था और सोने की एक अँगूठी। वे ध्यान से दोनों चीजों को देख रहे थे। आँखें गीली थीं।

मुझे देखकर बोले वे—"आओ कौशल ! मैं अत्यधिक पीड़ित

हूँ आज। और मेरा अनुमान है कि तुमने मेरी पीड़ा लक्ष्य कर ली है....मैं कुछ छिपाऊँगा नहीं तुमसे....एक कहानी कहूँगा....सुन सकोगे....''

''सुनूँगा...'' बोला मैं।

''लो इन्हें देखो पहले!'' ठाकुर साहब ने वह कागज और अँगूठी मेरे हाथों पर रख दी--''वैकल्य का एक इतिहास छिपा है इन चीजों में...''

मैंने देखा--अँगूठी सोने की बनी थी, जिस पर मीनाकारी करके एक नागिन का चित्र बनाया गया था और उस कागज में लिखा था—

मैं हूं कितनी पास पिया के, फिर भी कितनी दूर।
एक नदी के दो किनारे; मिलने से मजबूर॥

मैंने कागज और अँगूठी उन्हें लौटा दी और एक ठण्डी साँस निकल गई मेरे मुख से, जैसे कहानी सुनने के पहले ही उसकी करुणा मेरे रग-रग में समा गई हो।

''सुनो'' ठाकुर साहब ने अपनी कहानी प्रारम्भ की।

और मैं सुनता रहा, सुनता रहा--

• •

बदन साँवला था मगर दिल का रंग सुनहला था।

यौवन के आगमन से रग-रग में उन्मत अवशता भर गई थी। बोझिल पग अपने आप लड़खड़ा उठते थे।

कभी-कभी अधरों पर जब एक मादक मुस्कान बिखर जाती अथवा कपोल हृदयग्राही हँसी हँस पड़ते तो जैसे चारों ओर चाँदनी की आभा छिटक जाती थी।

यौवन का आवेग एक नई वस्तु थी उस अल्हड़ युवती के लिये।

और जब कभी उसके अन्तराल के किसी कोने से एक अव्यक्त; अस्पष्ट-सी बेचैनी उभर कर उठ खड़ी होती थी—

तो वह समझ ही न पाती थी कि यह क्या है?—यह वेदना

क्यों है ? यह छिनी-छिनी पीड़ कैसे उठ पड़ी है ? यह व्यथा किस कारण से जग उठती है उसके हृदय में ?

नाम उसका है नीरजा ।

बचपन के दिन सुनहले थे उसके परन्तु जवानी के दिन काले-काले से लगते हैं ।

बाल्यावस्था में सुख-चैन एवं लाड़-प्यार में पली हुई युवती, आज युवावस्था में गरीबी के दिन पाकर कभी-कभी बेचैन हो उठती है ।

पिता कभी के मर चुके हैं और उनकी मृत्यु के साथ-साथ अगम वैभव और असीम सुख का भी अन्त हो चुका है ।

अब केवल उसकी माँ है और वह है । और किसी तरह वे दोनों, अपनी गरीबी में ही सन्तोष कर के दिन गुजार रही हैं ।

पिता की छाया खोकर, मातृप्रेम की आड़ में ही सुखी है नीरजा ।

कालेज में पढ़ती है ।

माता ने हजार दुख सह कर उसे इण्टरमीडियेट तक पहुँचाया है ।

उस तीव्र मस्तिष्क की युवती ने अपनी कक्षा के सभी विद्यार्थियों को अपनी प्रतिभा से बहुत पीछे छोड़ दिया है ।

पछाड़ खाकर कितने ही विद्यार्थी उसके सम्पर्क में आना चाहते हैं परन्तु वह है कि किसी की ओर देखती तक नहीं, किसी की सुनती तक नहीं ।

अपने काम से काम रखती है वह । उच्छृङ्खलता को वह कत्तई पसन्द नहीं करती ।

प्रेम को—उबलते-उफनाते प्रेम को, वह हानिकर एवं अनावश्यक समझती है ।

वह स्निग्ध प्रेम चाहती है । जिससे उसे शान्ति मिले, संरक्षण मिले, ऐसा सहचर पाने की अभिलाषिनी है वह ।

परन्तु कालेज के लड़के उसकी इस अभिलाषा को क्यों महत्व देने लगे ?

सौन्दर्य को ही सब कुछ समझने वाले वे अनुभवहीन विद्यार्थी, सात्विक प्रेम की परिभाषा क्या जानें ? वासना के उबाल को ही वे प्रेम समझते हैं ।

और इसीलिये वे टिड्डी की तरह जिसके पीछे पड़ जाते हैं, उसका पीछा छूटना मुश्किल हो जाता है ।

नीरजा भी परेशान है इन लड़कों से ।

भोली-भाली युवती क्या जाने कि आजकल के बालक जमीन सूंघते ही प्रेम की परिभाषा जानने लगते हैं ।

उस दिन !—

जब नीरजा कालेज की सीढ़ी पर से उतर रही थी तो एक विद्यार्थी ने उसे धक्का दे दिया ।

नीरजा की सारी पुस्तकें जमीन पर गिर पड़ीं । आवेश से उसका मुख लाल हो गया । कुछ न बोलकर वह झुक पड़ी अपनी पुस्तकें उठाने को ।

परन्तु उससे पहले ही वह युवक भी झुककर उसकी पुस्तकें उठाने लगा था, फल यह हुआ कि दोनों के सर आपस में टकराये ।

नीरजा को यह और भी बुरा मालूम हुआ ।

जब उस युवक ने पुस्तकें उसके हाथों पर रक्खी तो बोली वह—"देखकर नहीं चलते आप ?—"

"मुझे क्षमा करें"...युवक विनम्र स्वर में बोला—"जान-बूझ कर मैंने ऐसी धृष्टता नहीं की है....अनायास ही धक्का लग गया आपको !"

"मगर आप आँखें खोलकर क्यों नहीं चलते ?...." रूखे स्वर में नीरजा ने कहा ।

"आँखें खोलकर चलना चाहता हूं नीरजा देवी !....मगर मेरी आँखें बहुत कमजोर हैं—" बोला युवक ।

उसके मुख से अपना नाम सुनकर नीरजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

वह उदय प्रताप उसका नाम कैसे जानता है ?

उस युवक का नाम उदय प्रताप था। बी० ए० फाइनल का विद्यार्थी था वह।

कालेज का फर्स्ट डिवीजनर होने के नाते सभी उसे पहचानते थे।

"आपने मेरा नाम कैसे जाना ?—" पूछा नीरजा ने।

"भला आपका नाम कौन नहीं जानता नीरजा देवी !... सौभाग्य ही कहिये इसे कि..."

"चुप रहिये ! —" नीरजा बिगड़ कर बोली—"सभ्य होकर सभ्यता का व्यवहार करना सीखिये..."

"मैं कैसे बताऊँ आपको—" उदय कहने लगा—"कि मैंने जान बूझकर आपके साथ धृष्टता नहीं की है....अनजान में हुए इस अपराध के लिये मैं अपनी आँखों को ही दोष दें लेता हूँ...."

"आप की आँखें कमजोर हैं तो चश्मा क्यों नहीं लगाते ?..."

"जी हाँ !...जी हाँ !....चश्मा तो मुझे लगाना ही चाहिये मगर क्या करूं ?...मेरी आँखों ने इसके पहले कभी धोखा नहीं दिया था...यह पहला ही अवसर है नीरजा देवी !...."

"तो यह क्यों नहीं कहते, आपकी आँखें कमजोर नहीं हैं वरन् हृदय कमजोर है...."

"जी हाँ !. .जी नहीं ! ऐसी बात तो नहीं है नीरजा देवी !... कत्तई ऐसी बात नहीं है...जरा-सी गलती के लिये आप यह लांछन न लगायें मुझ पर...."

"यह जरा-सी गलती है मिस्टर उदय प्रताप ?...." नीरजा ने आवेश भरे स्वर में पूछा।

"तो आप भी मेरा नाम जानती हैं ?—" उदय बोला।

"भला धक्के खाकर भी आपका शुभ नाम कौन न जानेगा ?...

ऐसा धक्का दिया आपने कि मेरी बाँह उखड़ते-उखड़ते बच गई..." नीरजा ने कहा।

"आपकी बाँह के लिये मुझे दर्द है—" बोला उदय।

"क्या है?...."

"दर्द है....जी नहीं! सहानुभूति है....मगर अच्छा होता कि आपकी बाँह उखड़ जाती, मुझे आपकी सेवा करने का अवसर तो मिल जाता और मैं आपका क्रोध शान्त कर देता...."

"देखिये मिस्टर उदय प्रताप! मुझे ऐसी अशिष्ट बातें जरा भी पसन्द नहीं हैं—" नीरजा ने कहा।

"जी हाँ! ये बातें अशिष्ट हैं-आपको जरूर पसन्द नहीं आती होंगी परन्तु मेरे पास शब्दावली की कमी है नीरजा देवी!..."

"आप वाचाल बहुत हैं..." नीरजा बोली।

"क्या करूँ नीरजा देवी!" उदय ने कहा—"इन्सान पैदा होकर बोलना ही तो सीखता है....और जो जरा तेज बोलने लगता है, उसे अपने आप वाचाल की उपाधि मिल जाती है..."

"आप चले जायें यहाँ से—" तेज आवाज में बोली नीरजा।

"जी नहीं! यह कैसे हो सकता है कि आप गुस्से से भरी खड़ी रहें और मैं असभ्यता प्रदर्शित करता हुआ यहाँ से चल दूँ...."

"सभ्यता का आपको बहुत ध्यान है?..."

"जी हाँ?....जी नहीं..."

"लीजिये, मैं स्वयं ही चली जाती हूँ..." बोली नीरजा—"आप वहीं खड़े रहकर सीढ़ियाँ गिनिये..."

"जी नहीं! मैं तो आपकी पगध्वनि सुनूँगा और पैर सञ्चालन गिनूँगा...." उदय ने कहा।

उत्तेजित होकर नीरजा चल पड़ी वहाँ से।

और उदय वहीं खड़ा रहकर उसे देखता रहा।

दूसरे दिन।

लाइब्रेरी में पुनः नीरजा और उदय की भेंट हो गई।

नीरजा ने उस ओर से मुँह फेर लिया।

परन्तु उदय लपक कर उसके पास आया।

बोला—"क्षमा करेंगी नीरजा देवी!...कल आपकी यह पुस्तक सीढ़ी के पास ही पड़ी रह गई थी। जल्दी-जल्दी में मैं इसे नहीं उठा सका था। जब आप चली गईं, तब मैंने इसे देखा .."

कहकर उदय ने एक पुस्तक नीरजा के हाथों पर रख दी।

"धन्यवाद! " नीरजा ने कहा।

"आपकी यह पुस्तक तो बड़ी रोचक रही—" बोला उदय—"ऐसे उपन्यास मैंने बहुत कम पढ़े हैं। यह तो कहिए कि सौभाग्य से यह मेरे हाथ लग गई..."

"आप किस उपन्यास की बात कर रहे हैं?"—पूछा नीरजा ने।

"नीलम के विषय में कहा रहा हूँ मैं, जिसे अभी-अभी मैंने आपको दिया है... आपने तो इसे पढ़ा ही होगा?..."

"जी हाँ!..." अनमने स्वर में कह दिया नीरजा ने।

"पसन्द आया आपको?—" उदय से पूछा।

"जी हाँ, बहुत...."

"क्या आप अक्सर उपन्यास पढ़ा करती हैं नीरजा देवी!..."

उदय के प्रश्न से नीरजा खीझ उठी।

"जी हाँ...अब आप जा सकते हैं...." बोली वह।

"एक बात मैं आपसे पूछना चाहता था—" उदय ने कहा।

"वह भी पूछ डालिए—" नीरजा बोली।

"रायल सिनेमा में फायर्ड वाइफ चल रही है—" हिचकिचाते हुए उदय ने कहा।

"तो?..."

"क्या आप आज सिनेमा देखने चल सकेंगी?...."

"जी नहीं!—" बोली नीरजा—"मुझे अवकाश नहीं है..."

"इच्छा होने से अवकाश निकल ही जाता है नीरजा देवी!..."

"मैंने कहा न आपसे कि मुझे सिनेमा से घृणा है..." नीरजा रूक्ष स्वर में बोली।

"किसी वस्तु से दूर भागते रहने से घृणा उत्पन्न होती है.... अगर आप अक्सर सिनेमा देखा करें तो आपकी यह घृणा दूर भाग जाय—"

"आपकी इस सलाह के लिए धन्यवाद !..."

"तो फिर चल सकेंगी आप ?—"

"जी नहीं !—" उत्तेजित स्वर में बोली नीरजा—"आप क्यों मुझे परेशान करते हैं मिस्टर उदयप्रताप !..."

"मैं आपको परेशान तो नहीं कर रहा हूँ नीरजा देवी !..." संयत स्वर मे उदयप्रताप ने कहा।

"परेशान ही तो कर रहे हैं....एक बार कह दिया कि माँ की तबीयत खराब है; मैं नहीं जा सकूँगी—फिर आप बार-बार हठ क्यों कर रहे हैं ?..."

"माँ की तबीयत खराब होने के विषय में तो आपने अभी तक कोई बात नहीं की थी नीरजा देवी..."

"मगर अब तो कह रही हूँ...."

"तो ठीक है—मैं अब हठ नहीं करूंगा..." उदय बोला—"आप को उपन्यास पढ़ने का शौक है—क्या आप मेरा यह उपन्यास पढ़ने का कष्ट करेंगी ?..."

"कौन-सा उपन्यास है ?" नीरजा ने पूछा।

उपन्यास पढ़ने का व्यसन था उसे इसीलिए उसे कुछ उत्सुकता हुई।

"भँवरा है !....इसे मैंने कल ही खरीदा है—"

"दे दीजिये !....मैं पढ़कर कल लौटा दूँगी...."

"लीजिये—" कहकर उदय ने वह उपन्यास नीरजा के आगे बढ़ा दिया।

"धन्यवाद !—" नीरजा ने कहा—"अब आप चले जायें;

बड़ा कष्ट हुआ आपको...''

और उदय के कुछ कहने के पहले ही, वह स्वयं घूमकर चल पड़ी।

घर आई तो देखा कि माँ की तबीयत ज्यादा खराब हो गई है। ज्वर के साथ-साथ श्वास भी तीव्र वेग से चलने लगा है।

''कैसी तबीयत है माँ ?--'' पूछा उसने।

''ठीक ही तो है बेटी !—'' शिथिल स्वर में माँ ने कहा।

''ठीक नहीं है माँ !—'' बोली नीरजा–''तुम मुझे भुलावे में मत डालो। मुझे किसी डाक्टर को बुला लाने दो ''

''पगली कहीं की–'' बूढ़ी माँ बोली—''टूटा हुआ घर फिर से बन सकता है मगर टूटा हुआ शरीर क्या कोई बना सका है कभी....बुढ़ापे से सब कुछ छूट जाता है, परन्तु रोग नहीं छूटता बेटी ! रोग भी साथ छोड़ दे तो बुढ़ापे का सहारा ही कौन रह जाय...''

''तुम दवा भी तो ठीक से नहीं पीती माँ ! ...''

''दवा से मृत्यु और निकट आती है नीरजा !...फिर डाक्टरों के पीछे बर्बाद करने के लिए धन भी तो चाहिए....''

''मैं भीख माँगूंगी मगर !....''

''चुप रह ! '' मधुर झिड़की दी माँ ने—''तेरा पहाड़-सा जीवन पड़ा है सो यही करती रहने का इरादा है क्या ?....''

''........''

'तेरे पिता जब मरने लगे थे तो उनकी यह इच्छा थी कि उनकी पुत्री पढ़-लिखकर समझदार बन जाय...''

''समझदार तो बन गई हूँ मैं; फिर भी मुझे तुम्हारे सहारे की जरूरत है माँ ! तुम न रहोगी, तो मुझे रास्ता कौन दिखायेगा....''

''रास्ता ?...'' बुढ़िया माँ क्षीण हँसी हँस पड़ी—''मैं बूढ़ी हो गई, मुझे स्वयं ही रास्ता सूझ नहीं पड़ता तो तुझे क्या रास्ता

दिखा सकूँगी ?....तुम्हीं स्वयं ही अपना रास्ता खोजना पड़ेगा बेटी !..."

"तुम न जाने कैसी बातें किया करती हो माँ !...." नीरजा ने कहा।

"चल हट यहाँ से !....अभी कालेज से दौड़ी आई, सो चारा-पानी करना तो दूर रहा, यहाँ बैठकर मेरा सर चाट रही है..." माँ ने प्यार भरे स्वर में कहा।

"चारा-पानी ?...." हँसकर बोली नीरजा—"क्या मैं पशु हूँ माँ, जो चारा-पानी करूँ ?"

एकाएक माँ की आकृति गम्भीर हो गई। बोली—

"हम पशु ही तो हैं बेटी !...जहाँ धन का इतना महत्व हो, वहाँ धनहीनों का मूल्य ही क्या ?..."

"प्राण तो सभी के मूल्यवान होते हैं माँ !–" नीरजा ने कहा।

"नासमझ है तू –" माँ बोली—"प्राण तो मूल्यवान होता ही है परन्तु शरीर की काठी तो दो कौड़ी से ज्यादा की नहीं होती...धन के लिए लोग अपने और दूसरे के शरीर पर कितना अत्याचार करते हैं?....शरीर तो एक दिन जलकर राख हो जाता है परन्तु अत्याचार की कहानी कहने-सुनने को रह जाती है... अच्छा, अब जाकर कुछ नाश्ता कर ले...."

नीरजा अपने कमरे में आई। कुछ नाश्ता करके "भँवरा" पढ़ने बैठ गई। तीन-चार पृष्ठ के बाद, पेन्सिल से लिखी हुई एक कविता पर उसकी दृष्टि पड़ी।

सुन्दर एवं पुष्ट अक्षरों में किसी ने लिखा था—

आशा में मधुर मिलन की, ये अपनी आँखें डाले।
दिन रात तड़पते रहते, ले उर अन्तर में छाले॥

कविता इतनी मार्मिक और अक्षर इतने सजीव थे कि नीरजा के हृदय का कोना-कोना एक व्यथा से परिपूर्ण हो उठा।

पढ़ना बन्द करके, मस्तक पर हाथ रखकर सोचने लगी वह।

उदय ने क्या उसी को लक्ष्य करके यह कविता लिखी है।

क्या उसके अन्तर में कोई छाला पड़ गया है कि वह दिन-रात तड़पता रहता है?—किसके मधुर मिलन की आशा में उसने अपनी आँखें बिछा दी है?

बड़ी देर तक सोचती रही वह।

चाहती थी कि उदय की स्मृति उसे न आये परन्तु रह-रहकर वह मादक याद, मन में सिहरन-सी भर जाती थी।

और क्षण भर के लिये वह व्याकुल-सी हो उठती थी।

अन्त में अपनी विचारधारा को नियन्त्रित करके उसने पुनः पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ किया।

कुछ ही पृष्ठ पढ़ने के बाद पुनः एक कविता पर उसकी दृष्टि पड़ी, लिखा था—

दिल में मीठी आग नयन में सागर बनकर आना।
होठों में मदिरा भर करके धीरे से मुस्काना॥

नीरजा का हृदय वेदना से भर उठा।

उदय का यह आह्वान किसके लिए है?—कौन उसके दिल में मीठी आग बनकर आयेगा? कौन उसके नयनों में सागर बनकर समायेगा? कौन अपने होटों में मदिरा भर करके धीरे से मुस्कायेगा?

समझ न सकी नीरजा।

उदय की लिखावट उलझन में डालती जा रही थी। नीरजा को उस अह्लादकारिणी अनुभूति से पीड़ा होने लगी थी।

मगर उस क्षणिक पीड़ा का शमन करके वह पुनः पढ़ने लगी।

उपन्यास अत्यन्त रोचक था और वह पढ़ती जा रही थी।

एक जगह उसने और लिखा देखा—

तुमने मेरे भोले दिल से आँख मिचौनी खेली।
अरमाँ जल कर खाक हो गये, लाख मुसीबत झेली॥

उसने पुस्तक पटक दी। पीड़ा की मधुरता ने उद्वेग की सृष्टि

कर दी थी।

वह उदय चाहता क्या है ? इस तरह का अव्यक्त सन्देश उसने उसके पास क्यों पहुँचाया ? वह पहेलियाँ तो समझ सकती नहीं, किसी के हृदय में पैठ कर वहाँ की हलचल तो देख सकती नहीं।

वह उठ कर खड़ी हो गई। देखा सन्ध्या होने को आ रही थी और उसको कुछ ध्यान ही नहीं था जैसे !

उसने लालटेन जलाई और कोर्स की पुस्तकें लेकर पढ़ने बैठ गई।

परन्तु न जाने क्यों आज उसकी तबीयत पढ़ने में नहीं लग रही थी। उसने अपने मस्तिष्क को संयत करना चाहा परन्तु न हो सका।

उदय की एक-एक बात उसके कानों में प्रतिध्वनित होती रही। उसने अपने कान बन्द कर लिए।

परन्तु कानों के परदे रह-रहकर चिल्ला उठते थे—"मुझे क्षमा करें नीरजा देवी !...मेरी आँखें बहुत कमजोर है भला आपका नाम कौन नहीं जानता....जरा-सी गलती के लिए आप यह लांछन न लगायें मुझ पर....तो आप भी मेरा नाम जानती हैं...आपकी बाँह के लिये मुझे दर्द है...क्या आप आज सिनेमा देखने चल सकेंगी..."

उदय की कही हुई प्रत्येक बात श्रेणीबद्ध होकर उसके कानों में गूंज रही थी। वह अपने कमरे से भाग कर माँ के कमरे में चली आई।

सोचा उसने—

एकान्त में रहने से उसका हृदय बेलगाम घोड़े की तरह भागता जायगा।

रात के आठ बजते-बजते उसकी माँ की तबीयत ज्यादा खराब हो गई।

उसी समय आसमान पर बादल घिर आये और चन्द्रमा का उज्ज्वल मुख श्याम-आवरण से आच्छादित हो उठा।

ऐसा लगता था कि पानी अब बरसा, तब बरसा।

अकेली नीरजा, माँ की दशा देखकर घबरा उठी।

ऐसे समय धैर्य बँधाने के लिए किसी साथी का अभाव उसे प्रतीत हुआ। यदि आज कोई उसका हमदर्द होता तो वह जाकर डाक्टर बुला लाता और माँ की सेवा सुश्रुषा में उसका साथ देता।

परन्तु इस समय तो वह अकेली ही है। स्वयं उसे ही डाक्टर को बुलाने जाना पड़ेगा।

उसने धोती बदली, चप्पल पहने और सड़क पर आकर वह चली उस ओर, जिधर डाक्टर घोष का मकान था।

आसमान की ओर दृष्टि उठाकर देखा उसने। काले-काले बादल, अपनी गोद में बिजली दाबे बैठे थे और बरस पड़ना ही चाहते थे।

परन्तु वह आगे बढ़ी ही जा रही थी।

रुकना नहीं था उसे—रुक भी नहीं सकती थी वह।

कुछ दूर आगे बढ़ते ही पानी की एक बूँद उसके सर पर आ गिरी।

हताश दृष्टि से उसने पुनः आकाश की ओर देखा—

इन बादलों को भी क्या आज ही बरसना था?

बूंदों की तेजी बढ़ने लगी और मनमारे हुए नीरजा भी आगे बढ़ती गई।

पानी से भींगकर धोती बदन से आ लिपटी, जैसे बिजली की चमक से डर गई हो बेचारी।

अब रुकना अनिवार्य हो गया।

यदि नीरजा इसी तरह पानी में भींगती आगे बढ़ती चली जायगी तो स्वयं भी रोगग्रस्त होकर चारपाई पकड़ लेगी।

सामने ही एक मकान का बरामदा था, उसी में जाकर वह खड़ी हो गई।

भींग जाने से बदन में कँपकँपी-सी छूट रही थी।

अँधेरे में खड़ी थी वह, पानी के निकल जाने की प्रतीक्षा करती हुई। परन्तु पानी रुका नहीं—मूसलाधार बरसने लगा।

मकान का दरवाजा पास में ही था और नीरजा उससे सटकर खड़ी हो गयी।

अन्दर बिजली जल रही थी, जिसके प्रकाश की एक रेखा, बन्द दरवाजे की दरार से निकल कर पानी का नर्त्तन देख रही थी।

एकाएक बिजली तड़की।

घोर निनाद तथा तीव्र प्रकाश से डर गई नीरजा और दरवाजे के किवाड़ से जा चिपकी।

उसका शरीर काँप रहा था और भय से वह जोरों से चीख पड़ना चाहती थी। आँखें प्रकाश से बन्द हो गई थीं।

दरवाजे के किवाड़ खुले हुये थे और ज्योंही नीरजा उससे चिपकी त्योंही वे खुल गये।

नीरजा का काँपता शरीर कमरे के भीतर आ रहा।

"कौन है...." किसी ने गम्भीर स्वर में पूछा।

तब चेत हुआ नीरजा को, जब उसने परिचित स्वर सुना।

तो क्या वह उदय के कमरे में आ गई है?

उसने आँखें खोल कर देखा।

देखा—उसके सामने उदय खड़ा था, आश्चर्यचकित-सा।

"अरे! आप?..." विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखता हुआ बोला उदय—"आँखों पर विश्वास नहीं होता नीरजा देवी!..."

नीरजा भयभीत थी, कुछ बोल नहीं सकी वह चुपचाप उदय के कमरे की अनुपम सजावट देखती रही।

"आप खड़ी क्यों हैं...आइये बैठिये!...." उदय ने नम्र स्वर में कहा।

और नीरजा आगे बढ़कर एक कुर्सी पर आ बैठी।

"नीरजा देवी!" बोला उदय।

"कहिये...." शुष्क स्वर में बोली नीरजा।

"इतना पानी बरस रहा है, फिर भी आपकी आवाज शुष्क ही है। नीरजा देवी !...एक बार तो अपनत्व भरे स्वर में बोलिये.... इतने निकट आकर, शब्दों में दूरत्व प्रगट करना ठीक नहीं..."

"आप यहीं रहते हैं--" पूछा नीरजा ने, वाणी की शुष्कता दूर करते हुए।

"जी हाँ ! इसे किराये पर ले रखा है...मगर आप यहाँ कैसे आ पड़ीं नीरजा देवी।...लगता है, जैसे आसमानी बादलों के साथ-साथ मेरी आशाओं के बादल भी बरस पड़े हों..."

"आप जो भी समझ लीजिए...." कहकर नीरजा मुस्करा उठी।

उस हृदयवेधी मुस्कराहट को देखकर उदय का रग-रग हर्ष से भर गया।

"आप भींग गई हैं नीरजा देवी !...मेरे पास कोई जनानी धोती तो नहीं है, हमारी ही धोती पहन लीजिये न..."

"रहने दीजिये...मैं यों ही ठीक हूँ..." नीरजा ने सलज्ज उत्तर दिया।

"नहीं, नहीं ! आपको धोती बदलनी ही पड़ेगी...उठिये..."

कहकर उदय उठ खड़ा हुआ और नीरजा का हाथ पकड़ कर उठाया उसने।

अपनत्व का स्पर्श पाकर नीरजा बह चली--बरसते हुए पानी के साथ-साथ उसके हृदय की झिझक भी बह चली।

उदय ने आलमारी से अपनी एक धुली हुई धोती निकाल कर दी और बोला–"बगल वाले कमरे में जाकर इसे पहन लीजिये...."

लाचार नीरजा को धोती पहननी ही पड़ी। उदय का हठ उससे टालते न बना।

जब वह सफेद धोती पहन कर आई तो उदय उसे एकटक देखता ही रह गया।

"कंघी करेंगी आप ?" पूछा उसने।

"आपके पास बड़ी कंघी होगी क्या ?--"

"क्या बताऊँ–" बोला उदय–"आपकी तरह बाल होते तो बड़ी कंघी रखता....छोटे बालों के लिए छोटी कंघी ही रखता हूँ नीरजा देवी।"

"रहने दीजिये, मेरे बाल ऐसे ठीक हैं–" नीरजा ने कहा।

"आप अब भी कांप रही हैं–लीजिये, यह रैपर ओढ़ लीजिये...."

"नहीं, रहने दीजिये...."

कहती ही रही नीरजा, परन्तु उदय ने उठकर रैपर उसके बदन पर डाल दिया। नीरजा के नेत्र कृतज्ञता के भार से बोझिल हो उठे।

जिस उदय को वह अब तक असभ्य एवं उदण्ड समझती आ रही थी, उसकी सभ्यता एवं व्यवहार को देखकर वह सदय हो गई।

"आपकी दी हुई पुस्तक तो अत्यन्त ही रोचक रही–"बोली नीरजा।

"उसे पढ़ा आपने ?" पूछा उदय ने।

"जी हाँ, थोड़ा-सा पढ़ चुकी हूँ–" बोली नीरजा–'खूब लिखा है–दिल में मीठी आग नयन में सागर बनकर आना"--अच्छा आह्वान है"

सुनकर झेंप गया उदय। कहने लगा–"ओह !-वह !-वह !...वह कविता तो मैंने यों ही लिख दी थी नीरजा देवी !–"

"मैं पहले ही समझ गई थी..."

"बात यह थी कि मैं एक पत्रिका पढ़ रहा था, उसमें की कई कवितायें मुझे बहुत पसंद आईं और मैंने उन्हें तुरंत लिख लिया...."

"रहने दीजिये–" नीरजा बोली–"बात बनाने की जरूरत नहीं...मुझे भी वे कवितायें बहुत पसन्द आईं..."

"सच नीरजा देवी !....। आवेशपूर्ण स्वर में बोला उदय।

"जी हाँ !...." बहुत धीरे से कहा उसने कि वर्षा की झंकार में वह दबी आवाज घुल-मिल कर रह गई।

"आपने यह तो बताया ही नहीं कि इतनी रात को कैसे यहाँ आ पड़ीं ?...कहाँ जा रही थीं ?..."

"डाक्टर के यहाँ..." नीरजा ने कहा।

"क्यों ?" उदय ने पूछा।

"माँ की तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गई है...परन्तु यह पानी तो थमने का नाम ही नहीं लेता—"

"घबराइये मत आप--मैं यदि आपकी कुछ सहायता कर सका तो मेरा अहोभाग्य।"

"क्या सहायता कर सकेंगे मेरी आप ?...."

"जो भी कहिये नीरजा देवी !...जान भी कहिये तो दे दूँ..."

"नहीं उसकी जरूरत तो अभी नहीं..." कहकर नीरजा ने अपने मादक नेत्रों से उदय की ओर तिरछे-तिरछे देखा।

कटाक्ष की चोट खाकर तड़प-तड़प कर रह गया वह।

"माँ की तबीयत खराब है--" बोला उदय—"ऐसे समय आपका उनके पास रहना अत्यन्त आवश्यक है....

"मैं अकेली क्या-क्या कर सकती हूँ...

"आप अपने को अकेली क्यों समझती हैं नीरजा देवी।.... बरसाती पानी की धार में बहते हुए दो हृदय आपस में आ मिले हैं--"उदय ने कहा 'मेरे पास एक ही छाता है। मैं आपको घर तक पहुँचा कर, डाक्टर को बुलाने चला जाऊँगा...."

"आप मेरे लिए इतना कष्ट न करें..."

"यह बात आप मुझसे फिर कभी मत कहियेगा नीरजा देवी ! आप और हम एक ही कालेज में पढ़ते हैं, क्या इस नाते भी मैं आपकी कुछ सहायता कर नहीं सकता ?...चलिये उठिये..."

नीरजा उठ खड़ी हुई।

उदय ने छाता उठाया, दरवाजा बन्द किया और अपने हाथों

से नीरजा के ऊपर छतरी की आड़ देकर चल पड़ा, कीचड़ से भरी हुई सड़क पर।

सभ्यता के नाते उदय केवल नीरजा के ऊपर छतरी दिये हुये था और स्वयं पानी में भींगता हुआ बाहर चल रहा था, नहीं तो एक छाते में दो के चलने से कहीं दोनों एक न हो जायें!

"आप बाहर क्यों चल रहे हैं मिस्टर उदय प्रताप! छतरी में आप भी आ जाइये न ..." नीरजा ने कहा।

"मैंने सोचा....मैंने सोचा कि...." कुछ कहना चाहता तो था उदय परन्तु कह नहीं पाता था।

"आप भी भीतर आ जाइये--" बोली नीरजा।

उदय भी छाते के अन्दर आ रहा। निकटतम सम्पर्क से जो बिजली चमकी, उसकी आभा ने आकाश की बिजली को जैसे प्रभावहीन कर दिया।

फिर भी दोनों चुपचाप चलते रहे।

कोई बोलता न था परन्तु शरीर हिल-हिल कर आपस में जा टकराते थे। और उस टक्कर से जिस मादकता की सृष्टि हो रही थी, उसने दोनों को विस्मृत-सा कर दिया था।

एकाएक नीरजा का पैर फिसल गया और वह जमीन पर गिर कर कीचड़ से अवश्य सन जाती अगर उदय के सचेत हाथों ने उसे भरपूर पकड़ न लिया होता।

"उफ्! मैं तो गिर ही जाती...." घबराये हुए स्वर में बोली नीरजा।

"सम्हल कर चला कीजिए आप—" उदय ने कहा।

"अकेले सम्हला नहीं जाता मिस्टर उदय प्रताप!"—मार्मिक स्वर में नीरजा ने कहा।

"मैं जो साथ हूँ नीरजा देवी!...."

"आप मेरा साथ कब तक दे सकेंगे?..."

"जब तक आप चाहें..." उदय ने कहा।

नीरजा के पग पुनः लड़खड़ा उठे और इस बार भी उदय ने उसे अपने हाथों में कस लिया।

बोला—"आपको बन्धन में रखना आवश्यक हो गया है, नहीं तो गिर पड़ेंगी...."

"मैं बन्धन से परे रहना भी नहीं चाहती..." नीरजा ने कहा।

दोनों चलते रहे; चुपचाप, विस्मृत-से।

नीरजा का घर आ गया।

बोली वह—"यही मेरा घर है...."

"अरे!" आश्चर्य करता हुआ बोला उदय—"तब तो आप मेरे बिल्कुल पास रहती हैं..."

"मैं आप से दूर ही कब हूं?"—नीरजा के स्वर से लज्जा टपक रही थी—"मगर मेरा घर, आपके मकान से एक मील दूर है...."

"एक मील?....तो इतनी जल्दी कैसे आ गये हम लोग?..."

"समय का ज्ञान शायद आप भूल बैठे हैं..."

"ठीक कहती हो तुम!...मैं केवल समय का ज्ञान ही नहीं, सब कुछ भूल गया हूँ नीरजा!...अब तुम जाकर माँ के पास बैठो, मैं अभी डाक्टर लेकर आता हूँ...."

"मेरा घर भूल तो नहीं जायेंगे आप?..."

"शायद अपना घर भूल जाऊँ परन्तु तुम्हारे द्वार का कण-कण हृदय पर अत्यन्त स्पष्ट हो उठा है..."

"अंधेरे में आये हैं आप, शायद भूल जायें!" बोली नीरजा।

"बाहर अंधेरा है मगर मेरा अन्तर प्रकाशमान हो उठा है.... मैं भूल नहीं सकता...."

कहकर उदय लौटा और डाक्टर बुलाने के लिये चल पड़ा।

नीरजा दरवाजा खोलकर माँ के कमरे में आई।

"कौन...नीरजा!...." माँ ने क्षीण स्वर में पुकारा।

"हाँ माँ!..."

वह माँ की चारपाई के सामने स्टूल पर आ बैठी ।

"क्यों परेशान होने के लिये गई थी बेटी !...पानी से भीग गई होगी तू ?... अरे, तेरी वह धोती क्या हुई ?...यह मर्दानी धोती कहाँ से पा गई तू ?..."

नीरजा चौंक पड़ी । अब तक उसे ध्यान ही न था कि वह उदय की धोती पहने है । माँ के प्रश्न से वह सजग हुई ।

उसे ऐसा लगा, जैसे धोती के रूप में उदय का सुपुष्ट शरीर उसके अङ्ग-अङ्ग से लिपट गया हो ।

बोली वह—"रास्ते में पानी बहुत जोर से बरसने लगा था और मैं एकदम भींग कर काँप रही थी...पास ही में मेरे एक सहपाठी का घर था सो मैं वहीं चली गई..."

"सहपाठी है वह तेरा ?...."

"हाँ माँ..."

"तभी तो...तभी तो स्नेह से भरकर उसने अपनी धोती तुझे पहना दी....मगर क्या उसके पास कोई जनानी धोती नहीं थी ?..."

"नहीं माँ, अभी तक वे अकेले ही रहते हैं..."

"क्या नाम है उसका ?..."

"उदय प्रताप !..." बोली नीरजा—"वे मुझे यहाँ तक पहुँचा भी गये हैं..."

"अच्छा ! तब तो भला लड़का मालूम पड़ता है, नहीं तो दुख के दिनों में कौन किसका साथ देता है ?...मगर जरा सँभल कर चलना बेटी ! जमाना बहुत बुरा है...जरा भी फिसलन, तनिक भी पतन स्त्री को नष्ट कर सकता है ..."

माँ के स्वर से लगता था, जैसे वह नीरजा के अन्तर की सभी बातें जान गई हो । जैसे उसका कोई भेद उससे छिपा न हो ।

बोली नीरजा—"वे अपनी ही जाति के हैं माँ !..."

कहकर वह स्वयं अपने में ही शरमा गई, सिकुड़ गई, सिमट

गई।

परन्तु अपने कथन से उसने यह स्पष्ट कर दिया कि अपने को और ऊपर उठाया है, नीचे गिरने नहीं दिया है।

उसने संभल कर पग रखा है। फिसलन या पतन का भय तनिक भी नहीं रह गया है।

"ठीक है नीरजा !..." माँ ने कहा—"तेरी उमर अब समझने लायक हो गई है और पढ़-लिख भी काफी लिया है तूने.... मुझे विश्वास है कि तू जो कुछ भी करेगी, अपने भले के लिए करेगी....तुझे अब स्वयं अपने जीवन की ओर देखना है....तेरे मरते हुए पिता के सामने जो वचन दिया था मैंने, उसे पूरा कर चुकी—केवल तुझे किसी योग्य हाथों में सौंपना बाकी रह गया है...सो मरते-मरते वह भी पूरा कर ही लूँगी...."

"क्या कहती हो माँ तुम ! मरने का नाम न लो मेरे सामने।'

"दुनिया में चाँद और सूरज हमेशा नहीं रहते नीरजा ! तो फिर आदमी की बात ही क्या ?...कोई अमरत्व लेकर थोड़े ही आई हूँ मैं..."

उसी समय दरवाजे पर कुण्डी खड़की। नीरजा ने लपककर दरवाजा खोला। बाहर डाक्टर के साथ उदय खड़ा था।

अन्दर आकर डाक्टर ने नीरजा की माँ को देखा और दवा के लिए नुस्खा लिख दिया। उदय दवा लाने पुन: डाक्टर के साथ चला गया।

लगभग घंटे भर बाद वह लौटा। माँ को दवा पिला दी गई।

नीरजा की माँ, उदय का सौम्य व्यवहार देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई।

"तुमने हमारी बहुत सहायता की बेटा !" बोली वह-"हमारे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसे देकर तुमसे उऋण हो सकूँ...और जो कुछ है मेरे पास, उसे देने में जरा भी नहीं हिचकूँगी..."

माँ की बातों का तात्पर्य समझकर नीरजा का मुख आरक्त

हो उठा और उस रक्ताभा को देखकर उदय भी सब कुछ समझ गया। पुलकित-सा हो उठा वह।

"नीरजा !...." माँ ने पुकारा।

"हाँ माँ !..." बोली नीरजा।

"उदय को अपने कमरे में ले जा और जलपान करा बेटी !... अगर इसने खाना न खाया हो, तो चटपट खाना बना डाल...."

"मैं खा चुका हूँ माँ !...." बोला उदय—"और इस समय जलपान करने की आदत नहीं है मुझे..."

"भला तू मेरे यहाँ क्यों जलपान करना चाहेगा उदय !" माँ ने कहा—"अमीर का बेटा है तू, गरीबों के घर क्या पा सकेगा ?"

"ऐसा कहती हो माँ ! तो मैं जलपान कर लेता हूँ...." उदय ने कहा।

उदय और नीरजा, दोनों दूसरे कमरे में आये।

"यह तुम्हारा कमरा है न ?...." चारपाई पर बैठते हुए पूछा उदय ने।

"जी नहीं, आपका !" बोली नीरजा।

उसके उत्तर से आत्मसमर्पण का जो भाव टपक रहा था, उसे उदय ने लक्ष्य किया—जैसे वह कहना चाहती हो कि हमारे-तुम्हारे में अब भेद ही क्या रह गया ?

जो तुम्हारा सो हमारा और जो हमारा, वही तुम्हारा।

"ठीक कहती हो नीरजा तुम !..." बोला उदय—"यह हमारा ही कमरा तो है...एक क्षण के लिए मैं भ्रम में पड़ गया था इसीलिए ऐसा पूछ बैठा, क्षमा करना मुझे..."

"जी नहीं, क्षमा करना तो मैं जानती ही नहीं..."

"दण्ड देना तो जानती हो न ?"

"जी हाँ !"

"तो दण्ड ही दे डालो..." उदय बोला—"मैं बिलकुल तैयार बैठा हूँ।"

"कौन-सा दण्ड चाहते हैं आप?" आँखों में हलाहल भर कर पूछा नीरजा ने।

"जो भी तुम देना चाहो...." उदय से कहा।

"आपके कपड़े भींग गये हैं..."

"नहीं, मैं तो छाते में गया था...."

"फिर भी बौछार से नहीं बच सके हैं आप..." बोली नीरजा—"ये बौछारें तिरछे-तिरछे वार करती हैं...."

"तुम भी कोई बौछार ही हो क्या नीरजा!" उदय ने पूछा।

"और नहीं तो क्या?..." मुस्कुराकर बोली वह—"चलिए उठकर कपड़े बदल लीजिये..."

कहकर नीरजा उठी और सन्दूक में से अपनी एक घुली हुई किनारदार धोती उठा लाई।

"लीजिए!...." कहा उसने।

"क्या है यह?"

"जनानी धोती भी नहीं पहचानते आप?..." हँस पड़ी नीरजा।

"यह तो मैं भी देख रहा हूं..." उदय बोला—"मगर क्या करूंगा मैं इसे..."

"पहनेंगे और क्या करेंगे!...क्या बताऊं मेरे पास कोई मर्दानी धोती नहीं है, इसलिए इसी को पहनना पड़ेगा..."

"क्या यही दण्ड दे रही हो मुझे?"

"यह काफी नहीं है क्या?...." नीरजा ने पूछा।

"बहुत काफी..." हँसकर बोला उदय—"मर्द से औरत बन जाना सबसे बड़ा दण्ड है..."

"तो उठिये, देर न कीजिये..." नीरजा ने कहा।

उदय ने अपने भींगे वस्त्र उतार दिये और नीरजा की साड़ी पहन ली, मर्दाने ढङ्ग से।

"ऐसा क्यों?..." नीरजा बोली—"इसे हमारी ही तरह पहनिये...."

"देखो नीरजा ! तुम व्यंग पर व्यंग देती जा रही हो और मैं चुपचाप सहन कर रहा हूँ परन्तु सहन-शक्ति की एक सीमा होती है..."

"अच्छा रहने दीजिए..."

"नहीं, जब तुमने कह दिया है तो मैं जरूर करूँगा..." कह-कर उदय ने साड़ी जनाने ढङ्ग से पहन ली।

नीरजा मुँह पर हाथ का आड़ देकर हँसने लगी।

पूछा उसने—"और कुछ चाहिये आपको ?"

"हाँ !"

"क्या ?"

"एक बाडी भी दे दो मुझे..." बोला उदय।

"क्या करेंगे बाडी आप ?...."

"पहनूँगा...तभी तो नवीन परिधान पूर्णता को प्राप्त होगा ?"

"क्षमा कीजिये ?" नीरजा ने कहा—"मेरी बाडी आपको अँटेगी नहीं।"

"तो क्या मैं यों ही काँपता हुआ बैठा रहूँ ?" बोला उदय—"कम से कम मुझे ओढ़ने के लिये कोई दुशाला तो दो..."

"हम गरीबों के पास दुशाला नहीं मिल सकेगा...."

"देखो नीरजा ! अब अपने मुख से फिर कभी अमीरी-गरीबी की बात मत कहना..."

"नहीं तो क्या करेंगे आप ?"

"तुम्हारी धोती का गले में फन्दा डालकर छत से लटक जाऊँगा...."

"लीजिये, मैं अब कभी नहीं कहूँगी....एक इन्सान को मारने का कौन पाप ले ?" बोली नीरजा।

"तुम तो बातों से ही मेरा कम्पन दूर करना चाहती हो..." उदय ने कहा—"मैं यहाँ बैठा काँप रहा हूँ और तुम वहाँ खड़ी-खड़ी मेरी साड़ी देख रही हो..."

"सच कहती हूँ, साड़ी पहना कीजिये आप, बड़ी अच्छी लगती है आपके बदन पर...."

"अच्छे बदन पर सभी चीजें अच्छी लगती हैं।...." उदय ने कहा—"तुम्हारी तरह छटाँक भर का शरीर थोड़े ही है कि लड़खड़ा कर जिस-तिस की गोद में गिर पड़े ..."

"रहने दीजिये, बातें बनाने में आप बड़े पटु हैं..."

"पटु तो मैं हूँ ही..." बोला उदय—"मगर अब मेरे ऊपर कृपा करो, नहीं तो कल सबेरे ही मुझे ठंडक लग जायगी..."

"लगने दीजिये ठंडक....मैं आपकी ठंडक दूर कर दूँगी ..."

"कैसे ?...."

"आग लगाकर !" नीरजा ने कहा।

"और पास आकर नहीं ?"

"चलिये, आप बड़े वैसे हैं...." शरमाकर मुँह फेर लिया नीरजा ने।

"बड़े वैसे क्या !...तुम स्वयं किस आग से कम हो..."

"यह अनुभव आपको कब हुआ ...."

"जब कालेज की सीढ़ी पर तुमसे धक्का लगा..."

"यह क्यों नहीं कहते कि जब कालेज की सीढ़ी पर तुम्हें धक्का मारा ! अपनी गलती छिपाना क्यों चाहते हैं आप ?" बोली नीरजा।

"अच्छा मैं छिपाऊँगा नहीं...समझ लो जान बूझकर ही धक्का दिया था मैंने !" उदय ने कहा।

"मगर क्यों ?"

"तुम्हारी सूरत ही ऐसी है कि अपने आप लोग दूर से खिंच-कर तुमसे टकरा पड़ते हैं...."

"आप तो ऐसी बातें कहते हैं कि मुझे..."

"शर्म आ जाती है, यही न कहना चाहती थी तुम ?..." बोला उदय।

"जी हाँ !"

"तो भई, शरमाने को रहने दो, चलो माँ को देख लें, कैसी तबीयत है उनकी...."

"चलिये !...." नीरजा बोली—"मगर आप तो मेरी धोती पहने हुए हैं..."

"तो क्या हुआ ?....तुमने भी तो मेरी धोती पहन रखी है।" उदय ने कहा—"माँ दयावती हैं, कुछ कहेंगी नहीं तुम्हें...चलो..."

दोनों माँ के कमरे में आये।

वह अब तक जाग रही थी। तबीयत कुछ सम्हल गई थी।

उदय को साड़ी पहने देख वह मुस्करा पड़ी। बोली—"उदय बेटा, यह क्या पहन रखा है तूने ?..."

"यह नीरजा की साड़ी है माँ !" उदय ने कहा।

"सो तो मैं भी देख रही हूँ..." माँ बोली—"शायद बदला ले रहे हो तुम बेटे !...नीरजा ने तुम्हारी धोती पहनी और तुमने नीरजा की साड़ी....अच्छा बदला रहा यह !..."

"अब कैसी तबीयत है माँ...." नीरजा ने पूछा।

"ठीक है बेटी....तूने उदय को जलपान करा दिया !"

"ओह, मैं तो भूल हो गई थी !...."

कहकर नीरजा अपने कमरे में दौड़ गई और एक गिलास नीबू का शर्बत बना लाई।

उदय ने असीम तृप्ति के साथ वह सुमधुर शर्बत पीया। चीनी की मिठास जैसे नीरजा के हाथों का सम्पर्क पाकर और भी मीठी हो गई थी।

"मेरी तबीयत अब सम्हल गई है बेटा !..." माँ बोली उदय से—"अब तुम जाओ, तुम्हारे घर वाले प्रतीक्षा कर रहे होंगे.."

"यहाँ कौन बैठा है माँ, प्रतीक्षा करने वाला !...." उदय ने कहा—"मैं यहाँ अकेला ही रहता हूँ, मेरा घर तो मधुरिया ग्राम में है...."

"तुम्हारे माता-पिता वहीं रहते हैं !"

"मेरे माता-पिता नहीं हैं माँ !..." कहते-कहते उदय का गला भर आया।

"तब कौन है ?..."

"ताऊ हैं..."

"तुम्हारे पिता के पिता ?..." माँ ने पूछा।

"जी हाँ !" उदय ने कहा।

"और ?..."

"और ताई भी हैं..."

"अच्छा अब तुम जाओ बेटा ! यहाँ रहने से सो नहीं सकोगे तुम..." माँ बोली।

"तो मैं कल प्रातःकाल पुनः आ जाऊँगा...." कहकर उदय उठ खड़ा हुआ।

नीरजा उसे दरवाजे तक पहुँचाने आई।

बाहर आकर बोला उदय—"रात में पड़ी हुई यह ओस, दिन के प्रकाश में सूख तो नहीं जायगी ?"

"न जाने क्या कहते हैं आप...कुछ समझ में नहीं आता...."

उदय ने हाथ बढ़ाकर नीरजा की कलाई पकड़ ली। काँप कर चूड़ियाँ झनझना उठीं।

बोला वह—"तुम सब समझती हो नीरजा !....मगर समझ-कर भी समझना नहीं चाहती..."

"तो आप ही मुझे समझा दीजिये...."

"कलाई पकड़ लेने पर भी तुम नहीं समझी ?...."

"क्या समझूँ ?...जीवन में कितने ही बन्धन आ पड़ते हैं, क्या सभी को महत्व दिया जाय ?...."

"मगर इस बन्धन को मामूली बन्धन मत समझना... अच्छा, कल फिर भेंट होगी..." कहकर उदय चल पड़ा अपने डेरे की ओर।

पानी का बरसना धीमा पड़ गया था, परन्तु अँधेरा ज्यों का त्यों था।

जल्दी-जल्दी में उदय, नीरजा की साड़ी पहने हुए ही चल पड़ा था और थका-माँदा आकर वैसे ही चारपाई पर लेट गया।

नींद के थपेड़ों ने उसे मार-मार कर सुला दिया। सुबह नौकर आया तो उदय को साड़ी पहने सोता देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

रात में अधिक जगते रहने के कारण उदय देर तक सोता रहा।

इतने में ही उसके कुछ सहपाठी आ गये।

दरवाजा खुला था और वे धड़धड़ाते हुए अन्दर घुस आये।

"अरे, यहाँ तो कोई श्रीमतीजी शयन कर रही हैं...चलो यहाँ से, नहीं तो जग जाने पर चप्पलें फेंकने लगेंगी..." एक ने कहा।

"अरे, जरा मुँह भी तो देखो भलेमानस! यह तो मर्द का मुँह है..." दूसरे ने कहा।

'मर्द का मुँह?...' चौंककर बोला पहला—"देखूँ तो...अरे, हाँ यार, यह तो उदय ही है...क्या ठाट से साड़ी पहन कर सो रहा है पट्ठा!"

सब लोग उसकी चारपाई के पास बैठ गये।

एक ने पुकारा—'देवीजी!...जरा उठिये न स्त्रीजी!..."

सोया रहा उदय। जाग नहीं सका।

"ओ औरत!..." दूसरा चिल्ला उठा—"उठती है या सोई ही रहेगी...."

चौंककर उठ बैठा उदय।

अपने मित्रों को देखकर बनावटी क्रोध प्रदर्शित करता हुआ बोला—"सबेरे-सबेरे दानवों का मुँह कैसे दिखाई पड़ा आज?..."

"अरे देवीजी! अभी आपके लिये सबेरा ही है क्या?....जरा आँखें खोलकर घड़ी की ओर देखिये तो....नौ बज चुके हैं..."

"तुम्हारा सर बज गया है!..." बिगड़ कर बोला उदय—

"मगर फिर देवीजी कहा तो ठीक नहीं होगा..."

उदय को याद न था कि वह अभी तक साड़ी ही पहने हुए है।

"जरा इन औरतजी का मुख तो देखो भाइयों ?...." एक बोला—"साड़ी पहन कर बैठी हैं और मर्दों की तरह टिर्रा रही है...."

"साड़ी...." चौंक कर उदय ने अपने शरीर की ओर देखा और तब वह अपने मित्रों के व्यंग का कारण समझ पाया।

"माफ करना भाई !..." बोला वह—"मुझे याद ही नहीं था कि मैं साड़ी पहने हुए हूं..."

"मगर यह तो बताओ उदय कि यह साड़ी तुम पा कहां से गये ?..."

"शादी की है.. और कहां से पा गया ?"

"भई वाह ? रात ही भर में शादी हो जाना तो अलादीन के चिराग वाली बात हो गई....सुनकर बहुत आश्चर्य है मुझे !..."

"यार ! तुम लोग तो हो उल्लू !" दूसरा बोला-"यह साड़ी भी नहीं पहचानते....अभी कल ही तो इसे मिस नीरजा पहन कर कालेज आई थीं ?..."

"हां भाई ! बात तो बिलकुल ठीक कही तुमने...."

और अपना भेद खुल जाने से उदय का मुख पीला होते-होते सफेद हो गया।

"देख रहे हो न तुम जीवन !...." तीसरा बोला—"उदय का चेहरा देख रहे हो न ...लगता है जैसे किसी ने कालिख पोत दी है...चोरी पकड़ ली गई न !...."

"हां तो उदय !.. यह बताओ कि नीरजा देवी से कब तुम्हारी शादी हुई ? और दावत कब दे रहे हो ? तुम तो यार, टट्टी की ओट शिकार कर बैठे....हमें बताया तक नहीं, पूछा तक नहीं..." दूसरे ने कहा।

"खैर भई, अब तो कांग्रेचुलेशन्स दे ही डालो ....माफ करो

इसकी गलती को....'' पहला बोला ।

''ठहरो भाई, ठहरो !...जरा रुक जाओ, अभी कार्य में भंग मत दो...'' दूसरे ने कहा ।

''क्यों ? ...''

''मुझे बड़े जोरों से गुस्सा चढ़ रहा है। मारे गुस्से के मैं कांप रहा हूँ ..जीवन ! जरा तुम मुझे पकड़ लो, नहीं तो गुस्से से मैं अन्धा हो जाऊँगा, पागल हो जाऊँगा, बेहोश हो जाऊँगा....''

''देखो जी...'' झिड़ककर बोला उदय—''अगर तुम लोगों को अन्धा, पागल या बेहोश होना है तो बाहर जाकर होवो... निकलो यहाँ से...सुबह-सुबह आकर सिर चाट डाला...''

''देखो भाई जीवन ! यह उदय तो फुलझड़ी की तरह छूटने लगता है कभी-कभी ...इतने महानुभाव इसके यहाँ पधारे हैं तो कृतकृत्य होने के बदले, चाय पिलाने के बदले, तैश में आता जा रहा है...''

''आने दो तैश में जी...इस औरत से डरता ही कौन है.... चलो, वह स्टोव रखा है, हम लोग खुद चाय बनाकर पी लेंगे...''

मित्रों की धमा-चौकड़ी से उदय दस बजे के पहले नीरजा के यहाँ न पहुँच सका ।

जब वह वहाँ पहुँचा तो नीरजा को अपनी प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़ी पाया ।

उदय को देखते ही जैसे कमल खिल उठा ।

होठों पर मुस्कान बिखर गई नीरजा के ।

''कहिये साहब ! अभी को सबेरा हुआ है ?...'' पूछा उसने ।

''हाँ साहब ! अभी-अभी सोकर उठा हूँ....'' उसी लहजे में उदय ने कहा—''माफ कीजिये, मेरी घड़ी की एक सूई ने हड़ताल कर दी है और केवल बड़ी सूई से सबेरे का अन्दाज ही नहीं मिलता....''

''बहुत सोते हैं आप !''

"जी हाँ, पूछिये मत ! दिन को सोता हूँ और रात-रात भर, बरसते हुए पानी में लोगों को छतरियाँ लगाया करता हूँ..." उदय ने कहा।

नीरजा हँस पड़ी।

बोली—"अच्छा, तो अन्दर आ जाइये या केवल दरवाजे पर से ही लौट जाने का इरादा है..."

"जी नहीं, मैं अन्दर जरूर चलूँगा...मगर आप कृपया दरवाजे पर से हट जाइये नहीं तो धक्का लग जाने पर व्यर्थ ही आप मेरी सभ्यता को दोष देने लगेंगी..."

"बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं आप !...." नीरजा ने पूछा।

"जी हाँ, चाँद पा गया हूँ न, इसीलिए...." कहता हुआ उदय नीरजा को एक ओर करके अन्दर चला गया।

नीरजा भी पीछे-पीछे आई।

आज उसकी माँ की तबीयत बहुत अच्छी थी।

चारपाई पर बैठी हुई वह दरवाजे की ही ओर देख रही थी।

उदय को आता देखकर बोली—"आओ बेटा !..."

उदय ने आगे बढ़कर माँ के पैर छुए और पूछा—"कैसी तबीयत है माताजी !...."

"अब तो अच्छी है बेटा !...तूने मुझे बचा लिया...मगर इतनी देर से क्यों आया ?"

"क्या करूँ माँ !...मैं तो सुबह से ही दरवाजे पर आकर बैठा हूँ परन्तु नीरजा ने आँख मलते-मलते अभी दरवाजा खोला है..." उदय ने कहा।

"जी हाँ !....और यह क्यों नहीं कहते कि सुबह की पुरवैया ने पकड़ रखा था...चारपाई से उठने ही नहीं दे रही थी..." नीरजा बोली।

"अभी तो दवा है न ?..." उदय ने पूछा।

"हाँ बेटा ! आज भर के लिए है !...." माँ ने उत्तर दिया।

"तो मैं चलता हूँ, कालेज का समय हो गया है ..."

कहकर उठ पड़ा उदय।

नीरजा के साथ-साथ उसके कमरे में आया।

पूछा—"कालेज चलोगी कि नहीं आज ?"

"साड़ी तो आपने रख ली है..." बोली नीरजा—"चलूँ तो कैसे चलूँ ..."

"दूसरी पहन लो..."

"आपकी तरह पचास धोतियाँ तो हैं नहीं मेरे पास...कृपया आज शाम को मेरी साड़ी दे जाइयेगा..."

"अच्छी बात है..." बोला उदय—"मगर पहिले मेरी धोती तो दे दो..."

"आपकी धोती नहीं है मेरे पास...." नीरजा ने कहा।

"क्या हुई ?..."

"उसे मैं एक भिखारी को दे दी...."

"क्यों ?..." उदय ने पूछा।

"खुशी में..."

"किस बात की खुशी नीरजा...."

"होगी किसी बात की खुशी...आपको क्या बताऊँ ?...." नीरजा ने शोखी भरी आँखों से देखा उदय की ओर।

पुतलियों की मूक भाषा पढ़कर उदय विस्मृत-सा हो रहा।

उसी दिन—

कालेज भर में नीरजा और उदय की घनिष्ठता के विषय में कहानी फैल गई।

उदय के वाचाल मित्र, वह भेद न छिपा सके। साड़ी वाली बात भी सबको मालूम हो गई।

कितने ही तो उदय के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे और कितनी ही लड़कियाँ नीरजा के भाग्य पर।

तीसरे दिन नीरजा जब कालेज में आई तो उसे सब बातें

मालूम हुई।

वह लज्जा से गड़-सी गई।

और उस लज्जा ने उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया।

कालेज में वह उदय से बोल भी नहीं सकती थी परन्तु उदय था कि बात बात में उसका रास्ता रोकता था।

दिन बीतते चले—

और उदय एवं नीरजा के दो पृथक हृदय घुलमिल कर एक हो गये।

नीरजा की माँ भी अत्यन्त प्रसन्न थी।

उदय स्वजातीय था, सम्पन्न था।

और जैसे यही सोचकर उस वृद्धा ने, नीरजा के प्रति अपने अन्तिम कर्तव्य से भी छुट्टी पा ली थी।

निश्चिन्त थी वह।

सुख से मर भी सकती थी, नीरजा को उदय के हाथों में सौंपकर।

और उदय भी यही चाहता था।

उसे विश्वास था कि उसके वृद्ध ताऊ नीरजा से उसकी शादी होने के लिए, अपनी स्वीकृति अवश्य दे देंगे।

सोच-सोचकर कभी कभी हर्ष से पागल हो उठता था वह।

रात को उदय, भोजन करके जब चारपाई पर लेटा तो नीरजा की याद उसके हृदय पट पर उभर आई।

वह सोचने लगा—

और सोचता ही रहा।

नीरजा के प्रेम बन्धन में बँधे हुए उदय को आज दो महीने बीत चुके हैं।

तब से, इस बीच उदय जैसे इस दुनिया का प्राणी नहीं रह गया है।

वह उठता है तो मस्ती से भरा हुआ, आता-जाता है तो

छलकता हुआ, पढ़ता है तो उसकी आँखें आगे को दौड़ती चली जाती हैं।

किसी काम से थकता नहीं वह।

नीरजा उसकी प्रेरणा बनकर आई है।

उसमें शैथिल्य अब नहीं रहा, आलस्य अब नहीं रहा...

मन का हर एक कोना, हृदय का पोर-पोर, शरीर का रग-रग एक उन्मादकारी माधुर्य से भरकर उन्मत्त हो उठा है।

और अपने इस परिवर्तन पर स्वयं उदय भी चकित होकर सोच रहा है...सोचता चला जा रहा है....सोचने से थकता नहीं वह। विचार के घोड़े अपने आप दौड़ने लगते हैं।

उसी समय आ पहुँची नीरजा।

अस्त-व्यस्त, घबड़ाई मुख-मुद्रा लिये, चेहरे पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं।

उतनी रात गये नीरजा को उस अवस्था में आया देखकर उदय विस्मित हुआ और घबराया भी।

"नीरजा !...." उसने पुकारा।

और आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया उसने।

नीरजा का सारा शरीर कांप रहा था परन्तु उदय का अपनत्व भरा स्पर्श पाकर जैसे उसका कम्पन उसी क्षण रुक गया। सहारा पाकर वेदना का आवेग बहुत कुछ कम होकर स्थिर हो रहा।

"कैसे आई हो नीरजा !..." उदय ने पूछा।

"माँ की तबीयत एकाएक खराब हो गई है..." नीरजा ने उत्तर दिया—"आप इसी समय मेरे साथ चलिये...."

"मैं चलता हूँ !..." उदय बोला—"क्या तबीयत बहुत ज्यादा खराब है ?"

"हाँ !....शायद बच न सके....सांस तूफान की तरह चलने लगी है..." कहते-कहते नीरजा के नेत्रों से आंसू टपक पड़े।

उदय ने शीघ्रतापूर्वक कमीज गले में डाली और नीरजा के

साथ चल पड़ा।

नीरजा एक तेज इक्के पर आई थी।

दोनों शीघ्र ही पहुँच गये।

उदय ने नीरजा की माँ को देखा—

उसे प्रतीत हुआ, जैसे वह जीवन-दीप जो अब तक किसी प्रकार टिमटिमा-टिमटिमा कर जलता आ रहा था, अब निर्वाण के समीप है—

जैसे युग-युग तक, तूफान की ठोकरें खाती हुई जीवन-नैया, आज बीच भँवर में पड़कर डगमगा उठी है, डूब जाना चाहती है।

नीरजा के माँ की साँस तीव्र वेग से चल रही थी। बोल नहीं सकती थी वह। केवल इशारों में ही बातचीत कर सकती थी।

"मैं अभी डाक्टर बुलाता हूं!"—उदय ने कहा।

जैसे वह आशावादी युवक अन्त समय में भी मृत्यु का ग्रास छीनने को तत्पर हो।

मगर नीरजा की माँ ने अपना शिथिल हाथ उठा कर उसे रोक दिया।

जैसे मूक भंगिमा अपने आप बोल रही हो—

"रहने दो...मृत्यु के थपेड़े खाकर मनुष्य का जीवन स्थिर नहीं रह सकता...वह चलेगा...मृत्यु के पीछे-पीछे जीवन चलेगा... जीवन मृत्यु का दास है...पुरुष सदैव से ही नारी का दास रहा है, नारी के पीछे-पीछे चलता रहा है वह ...जीवन और मृत्यु का सम्बन्ध अटूट है, इनका साथ अक्षुण्ण है ..."

"माँ!... तुम यह क्या कर रही हो माँ ..." रो रही थी नीरजा, सर धुन-धुन कर रो रही थी।

उदय उसे अपने हाथों में सम्हाले हुए था।

और बड़ी उम्र का रास्ता चलते-चलते थक कर विश्राम लेती हुई वह वृद्धा माँ, मूक वाणी एवं बोलते-अधखुले नेत्रों से अपनी बेटी का पागलपन देख रही थी।

यह अनुभवहीन युवती मृत्यु को बांध रखना चाहती है जैसे।
जैसे वह माँ को कहीं जाने ही न देगी।

मगर वह तो जायगी ही।

और जार-जार रोती हुई यह नादान युवती, शोक के तमाचे खाकर, चुप हो बैठेगी दो चार दिन में।

यह तो होता आ रहा है इस दुनिया में ...और शायद अनन्त काल तक होता रहेगा।

"माँ....माँ !...."

तड़प-तड़पकर, रो-रोकर, नीरजा अपनी माँ को रोक रखना चाहती थी परन्तु आँसू देखकर, कभी जाने वालों का दिल पसीजा है ?

उदय ने करुणा से छटपटाती हुई नीरजा को अपने में आबद्ध कर लिया।

मरती हुई, विलीन होती हुई छाया को उसने दिखा दिया कि वह और नीरजा, दो नहीं हैं।

एक हैं और एक ही रहेंगे।

देखकर वृद्धा को परम सन्तोष हुआ।

उसने दोनों को पास आने का संकेत किया।

उदय और नीरजा, माँ के पास आये।

वृद्धा ने दोनों के हाथ एक कर दिये और बड़ी देर तक, बुझती आँखों द्वारा, उन दोनों को देखती रही।

देखती आँखें देखती ही रह गईं।

खुली आँखें फिर बन्द नहीं हुईं।

जैसे सदैव वह उन्हें उसी प्रकार देखती ही रहेंगी।

उदय ने माँ का निर्जीव शरीर चारपाई पर से उठाकर जमीन पर लिटा दिया।

इतने दिनों तक जमीन पर रेंगता हुआ जीव, अब मिट्टी का ढेर होकर पड़ा था और धू-धू कर जलती हुई चिता ने उसे मिट्टी

में मिला दिया था।

कलेजे पर पत्थर रखकर नीरजा ने वह दुःख सहा।

तड़प कर, रोकर, वह चुप हो गई।

करुणा ज्यादा दिनों तक उसके साथ न रह सकी क्योंकि स्वयं उदय आजकल उसके साथ आकर रहने लगा था।

किराये का मकान छोड़ दिया था उसने।

श्राद्ध व्यतीत हो जाने पर वे दोनों कालेज भी जाने लगे।

अब उदय ही नीरजा का सब कुछ था—

और कालेज भर में उनके इस सम्बन्ध की पुष्टि हो गई थी।

नीरजा के पीछे पागल-से फिरने-वाले अन्य युवक उसे पराया धन समझ कर मन मार बैठे।

धीरे-धीरे समय सरकता गया।

वार्षिक परीक्षा आ पहुँची।

दोनों ने परीक्षा दी।

सफलता की आशा उन्हें बहुत थी क्योंकि आन्तरिक प्रेम-सम्बन्ध में पड़कर उन्होंने घुल-मिलकर अध्ययन किया था और पढ़ते-पढ़ते वे अपना अस्तित्व तक भूल गये थे।

उस दिन जब उदय, पसीने से लथपथ, शहर से लौटा तो उसने नीरजा को दरवाजे पर खड़ी अपनी प्रतीक्षा करते पाया।

उदय को देखकर धीरे से मुस्कुरा पड़ी वह।

"किसकी प्रतीक्षा कर रही हो?"—उदय ने पूछा।

"आपकी!..." शरमाकर कहा नीरजा ने।

उदय ने नीरजा का हाथ पकड़ लिया और भीतर चारपाई पर ला बिठाया।

"मुझे पाकर भी, इस प्रतीक्षा का अन्त नहीं हुआ क्या नीरजा?..." नीरजा की ठुड्ढी ऊपर उठाकर उसकी लज्जावनत आँखों से आँखें मिलाते हुए उदय ने पूछा।

"आप मुझे छोड़कर न जाया करें...अकेली रहते मुझे डर

लगने लगता है !..." बोली नीरजा।

"क्यों ?...."

"माँ की छाया, कोने-कोने से उठ खड़ी होती है...."

"बड़ी डरपोंक हो तुम !" हँसकर कहा उदय ने।

"पुरुष होती तो मैं भी आप ही की तरह शान बघारती..." आँखों की गोली चलाकर बोली नीरजा—"तब आपको घर में छोड़कर मैं भी बाहर की हवा खाती...."

"तो अब से ही बन जाओ न पुरुष !" उदय ने कहा।

"पुरुष नहीं हूँ तो क्या पुरुष को नचाने वाली तो हूँ...."

कहकर नीरजा ने इस तरह से अँगड़ाई ली कि दूसरे ही क्षण उदय की गोद उसके कोमल शरीर से भर उठी।

"यह आपकी जेब में क्या है ?...." नीरजा ने पूछा।

"ताऊ का पत्र आया है आज !...." उदय ने कहा—"कालेज में दो दिन से पड़ा था !"

"मैं देख सकती हूँ इसे ?"

"क्यों नहीं ?..."

और उदय ने वह पत्र निकालकर नीरजा के हाथों पर रख दिया।

नीरजा उसे खोलकर पढ़ने लगी—

लिखा था—

प्रिय उदय,

पढ़ने में इतने व्यस्त हो गये तुम कि हम लोगों की याद ही भूल बैठे। एक पत्र भी न लिखा, तुमने अपनी कुशलता भी सूचित नहीं किया। तुम्हारी ताई रोज तुम्हारे विषय में पूछती हैं। कहती हैं अब उदय काफी पढ़ चुका है; अब उसकी शादी करके बहू से पैर दबवाना चाहती हूँ ...बुढ़ापे में पैर भी अधिक दर्द करते हैं न ?...तुम्हारी परीक्षा अब समाप्त हो गई होगी, फिर भी तुम घर नहीं आये। क्या १० महीने तक लगातार शहर में रहते-रहते

तुम्हारा जी नहीं भरा ?...जहाँ तक हो सके, बहुत जल्द तुम यहाँ चले आओ। मैं तुम्हारी शादी की बातचीत कर रहा हूँ।

ताऊ—

भानुप्रताप सिंह

पूरा पत्र पढ़कर नीरजा का मुख उतर गया।

तो क्या यह आखिरी सहारा भी उससे छिन जायगा ?

क्या उदय भी उसके हृदय-पिंजड़े में आकर, पर फटफटा कर उड़ जायगा ?

"नीरजा !...." उसकी आँखों से निकल आये आसुओं को देखकर उदय ने पुकारा।

नीरजा चुप रही। पलकों पर क्रीड़ा करने वाले आँसू, गतिमान होकर गालों पर बह चले अविराम।

"यह क्या हो गया तुम्हें नीरजा !..." उदय ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"रो क्यों रही हो तुम ?..."

"आप मुझे छोड़ देंगे....ताऊ आपकी शादी दूसरी जगह करना चाहते हैं..." भींगे हुए स्वर में नीरजा ने कहा।

"पागल हो गई हो तुम नीरजा !...ताऊ ऐसे नहीं हैं...वे मेरे हठ के सामने सदैव झुकते आये हैं...वे मुझे या तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे...हमारा सम्बन्ध हमेशा के लिये अविच्छिन्न रहेगा..."

"सच !...." एक गाल से हँसती और दूसरे से रोती हुई बोली नीरजा।

"मैं कल घर चल रहा हूँ !..." उदय ने कहा—"तुम्हें भी ले चलूँगा...अब हम लोग यहीं रहेंगे...."

"मेरी राय यह है कि आप पहले ताऊजी को सभी बातें साफ-साफ लिख भेजें..." बोली नीरजा—"इस तरह एकाएक मेरा जाना ठीक नहीं होगा..."

"तुम शङ्का मत करो नीरजा और जल्दी चलने की तैयारी कर लो...."

"अच्छा..."

आज्ञाकारिणी पत्नी की तरह उसने उसकी बात मान ली।

और दूसरे दिन! जब इण्टर क्लास के डिब्बे में वे दोनों चले तो दोनों का हृदय एक ही शङ्का से भरा था—"यदि ताऊ ने उन्हें घर में घुसने न दिया तो?"

तब तो उन दोनों की आशाओं पर तुषारपात हो जायगा।

उदय तो पुरुष है—

और पुरुष एक को खोकर, दूसरे से जी बहला सकता है।

परन्तु नीरजा नारी है—

और नारी, एक को पाकर, दूसरे को पाने का स्वप्न नहीं देखती।

पुरुष भौंरा है—

जो कली-कली पर उड़ता-फिरता है।

और नारी कली है—

जो काँटों के बीच पलकर, अपना रस लुटा देती है और सूख-कर, तड़पकर, वहीं डाल के नीचे गिर पड़ती है, अपना हँसता हुआ जीवन रोकर शेष कर लेती है।

रास्ते में उन दोनों में बहुत बातें हुईं।

एक छोटे से स्टेशन पर उदय उतरा।

प्लेटफार्म पर उतरते ही नीरजा का हृदय धड़कने लगा।

न जाने कहाँ से भय एवं शङ्का की एक डोर आकर उसे बाँध ले चली।

स्टेशन से बाहर आकर उदय ने देखा—

उसका चिरपरिचित बूढ़ा नौकर सुफल, बग्गी लिए खड़ा है।

उदय को देखते ही सुफल दौड़ा आया।

बड़े प्रेम से उसने झुककर उदय का पैर पकड़ लिया।

उदय ने हाथ पकड़कर उसे ऊपर उठाया।

बोला—"यह क्या करते हो सुफल काका!...."

"कुँवर बेटा ! तुम तो ऐसे हो गये जैसे गूलर का फूल....बूढ़े की खोज-खबर ही न ली....एक चीठी में पूछा भी नहीं कि सुफल जीता है या मर गया..." सुफल ने शिकायत पेश की।

"अब तो आ गया हूँ सुफल काका !..." उदय ने कहा — "अब मरने नहीं दूँगा तुम्हें, मरने लगोगे तो..."

"तुम्हारे न रहने से हम लोग जीते जी ही मरे हुए रहते हैं कुँवर बेटा !....जैसे चहकती हुई बुलबुल ही उड़ गई रहती है और सभी ओर सूना-सूना-सा लगता है....आओ, बेटा, बग्गी पर बैठो, ताऊ तुम्हारा रास्ता देख रहे होंगे...."

"अच्छे तो हैं न ताऊ !...." पूछा उदय ने।

"हाँ बेटा। सभी अच्छे हैं..."

उसी समय सुफल की दृष्टि उदय के पीछे सिमटी-सिकुड़ी खड़ी नीरजा पर पड़ी।

"यह बिटिया कौन है कुँवर बेटा ! .." उसने पूछा।

"चलो रास्ते में बताऊँगा।...." उदय ने कहा।

सभी बग्गी पर आ बैठे।

बग्गी चल पड़ी तो उदय ने पूछा—"गाँव में सब अच्छी तरह हैं न सुफल काका !...."

"सब अच्छे हैं बेटा !....अरे हाँ !...अभी परसों ही तो बेचारे सम्पत चमार की माँ मर गई। नरसों गया था तो एकदम भली-चंगी पके कटहल जैसी दरवाजे पर बैठी थी....कहने लगी—का हो सुफल बुढ़ऊ ! कुँवर बचवा आयेन की नाहीं... बड़ा जीव लागल हौ वोनके देखई बदे....दूसरे दिन सुना की बेचारी का गङ्गालाभ हो गया... अभी पिछले हफ्ते में महदेउवा धोबी का गदहा खो गया था, बड़ी-बड़ी मुश्किल से छनवर में चरते हुए मिला....लखना अहीर की भैंस को एक पँड़वा हुआ है कुँवर बेटा, जो एकदम घोड़े की शकल का है...यही हाल-चाल है गाँव का, मगर कुँवर बेटा; यह तो तुमने बताया ही नहीं कि यह बिटिया कौन है ?...."

"तुम्हारी कुँवरानी है सुफल काका !..." उदय ने कहा।

"आर्य !...." आश्चर्य से सुफल की दोनों आँखें खिड़कियों की तरह खुल गईं फिर धीरे से हँसकर बोला—"चलो, अच्छा हुआ बेटा ! बूढ़े ताऊ को हाथ-पैर फटकारने की जरूरत नहीं पड़ी। तुम्हीं अपने लिये बहू खोज लाए... इस खुशी में मैं चार आने भर अफीम लूँगा कुँवर बेटा !..."

"ले लेना अफीम..." उदय कहने लगा—"मगर ताऊ राजी न हुए तब क्या होगा सुफल....?"

"राजी काहे न होंगे ?...अगर इधर-उधर करें तो उनके सामने रोने लगना और आँख में जरा-सा पानी लगाकर आँसू भी दिखा देना, फिर तो ताऊ का दिल पिघले बिना न रहेगा। अरे बेटा ! बूढ़ों का दिल मोम होता है, जरा-सी आँच पाते ही नदी की तरह बह उठता है...."

"मगर आँसू में आँच कहा सुफल काका ! सो भी पानी के बनावटी आँसू ?...."

"अरे भाई ! पानी को जरा गरम करके तब आँख में लगाना...." सुफल ने कहा।

नीरजा और उदय, दोनों हँस पड़े।

बग्गी कच्ची सड़क पर से चली आ रही थी। दोनों ओर खेत ही खेत दिखाई पड़ रहे थे; जिनमें काम करते हुए कृषक अपना पसीना बहा-बहा कर उन्हें सींच रहे थे। छोटे-छोटे बच्चे तक कठिन परिश्रम से जुटे हुए थे।

उनके सामने केवल जीविका का प्रश्न था।

जीव कुछ नहीं था, जीविका ही सब कुछ थी।

"वह हवेली आ गई कुंवर बेटा !...." सुफल ने कहा।

नीरजा ने भी देखा—गाँव के मध्य, ऊँची जमीन पर बनी हुई हवेली, सर ऊँचा उठाये खड़ी थी, जैसे उसमें रहने वालों के अगम वैभव के भरोसे वह भी इठला रही हो।

अब बग्गी गाँव के भीतर घुस पड़ी थी।

चारों ओर से लड़के दौड़े आ रहे थे, चिल्लाते हुए—"कुंवर भैया आये!....कुंवर भैया आये .."

और यह सब देखकर नीरजा विस्मित-सी हो रही थी।

गाँव की सभ्यता भी क्या ही सौम्य है?

छोटे-बड़े का सवाल ही नहीं।

उसी समय उदय ने नीरजा को दिखाकर कहा—"देखो, यह हमारा मन्दिर है...शिवजी का मन्दिर!..."

नीरजा ने देखा—एक बड़े उद्यान में विशाल मन्दिर बना हुआ था। काफी चहल-पहल भी थी वहाँ।

बग्गी आगे बढ़ती चली जा रही थी और लड़कों का दल बग्गी के पीछे दौड़ रहा था।

इतने में ही कोई बालक चिल्ला उठा—कुँवर भैया आये.... दुलहिन लाये...दुलहिन लाये...कुँवर भैया ..."

सुनकर नीरजा का चेहरा लज्जा से गुलाबी हो गया।

मगर लड़के क्यों मानने लगे?

सभी एक स्वर से चिल्लाने लगे—"कुँवर भैया आये...दुलहिन लाये..."

इस शोर में एक ऐसा आकर्षण था कि स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे सभी दौड़ पड़े, कुँवर उदय प्रताप सिंह की दुलहिन देखने के लिए, जो मुँह खोले हुए, अपने दूल्हे के बगल में निःशंक बैठी हुई थी।

बेचारी नीरजा गाँव की सभ्यता क्या जाने?

हाथ भर का घूँघट, चाँद जैसा चेहरा ढँकने के लिये कहाँ से लाये वह?

किसी ने उसकी सुन्दरता पर आँखों की खिड़कियाँ खोलीं, विस्मित होकर।

और किसी ने घृणा से नाक-भौं सिकोड़े, नीरजा का लज्जा-परिहार देखकर।

ऊँट की गर्दन जैसा लम्बा घूँघट काढ़े हुए वधुयें भी देख रही थीं।

तब तक गाड़ी हवेली के द्वार पर आ लगी।

उदय ने देखा, उनके ताऊ, ठाकुर भानु प्रताप सिंह द्वार पर खड़े हैं।

चूड़ीदार पायजामा और सलमशाही जूते, बदन पर चपकन और गर्दन में सोने का कण्ठा, मुँह पर घनी-घनी सफेद दाढ़ी तथा मूँछें और सर पर बड़ा सा मुँड़ासा!

एकदम राजपूती शान थी वह।

साठ-सत्तर की अवस्था में भी जवानी का उत्साह भरा पड़ा था।

बुढ़ापे ने आक्रमण किया परन्तु उस बलशाली शरीर को शिथिल न बना सका वह—केवल सर और दाढ़ी के बाल पका कर चला गया।

ताऊ अत्यन्त गम्भीर प्रकृति के दयालु व्यक्ति थे।

परन्तु उनके मुख की ओर देखकर कोई भी उनके हृदय की थाह नहीं पा सकता था।

वे समुद्र से गहरे थे और हिमालय-जैसे गम्भीर।

उन्हें द्वार पर खड़ा देखकर उदय को परम आश्चर्य हुआ!

और भय भी, क्योंकि इसके पहले तो वे कभी द्वार पर आकर नहीं खड़े होते थे और उदय को स्वयं बैठक में चरण छूने के लिए जाना पड़ता था।

तो इस बार वे वहाँ क्यों खड़े हुए?

शायद बालकों की यह पुकार "कुँवर भैया आये—दुलहिन लाये" सुनकर ही वे उत्सुकतावश आ गए हों।

परन्तु उदय उनकी मुखाकृति देखकर यह नहीं समझ सका कि वे इस समय प्रसन्न हैं अथवा अप्रसन्न!

उनकी तेजपूर्ण मुखमुद्रा स्वाभाविक रूप से गम्भीर थी—

न उस पर प्रसन्नता की रेखायें थीं और न तो क्रोध का उद्वेग।

एकटक बग्गी की ओर देखते हुए खड़े थे वे।

नीरजा ने समझ लिया कि ये ही उदय के ताऊ हैं।

और यहीं आकर पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी की परम्परागत लज्जा सतेज हो उठी और बाध्य होकर थोड़ा-सा घूंघट निकाल लेना पड़ा।

उदय बग्गी से नीचे उतरा और आगे बढ़कर उसने ताऊ के पैर छुए।

परन्तु नित्य की भांति ताऊ ने उसका हाथ पकड़कर ऊपर नहीं उठाया।

गम्भीर स्वर में केवल इतना ही बोले—"उठो कुँवर!"

और जब उदय उठा तो वे घूम पड़े अपनी बैठक में जाने के लिये।

कहते गये—"मेरे साथ आओ कुँवर!..."

ताऊ की भंगिमा से उदय समझ गया कि वे प्रसन्न नहीं हैं।

उदय ने जो अपनी पत्नी अपने आप चुन ली है, उसकी इस निर्लज्जता पर वे मन ही मन क्रोधित हो उठे हैं।

उदय ने नीरजा को बग्गी पर बैठे रहने का इशारा किया और स्वयं ताऊ की बैठक की ओर बढ़ चला।

नीरजा का हृदय धक-धक कर रहा था।

वह समझ रही थी कि कोई न कोई भयानक बात अब उसे सुनने को अवश्य मिलेगी।

और हो सकता है कि उसका बसाया हुआ कल्पित स्वप्न-संसार नष्ट-भ्रष्ट होकर निराशा की आँधी में बिखर जाय।

उदय, ताऊ की बैठक में आया तो ताऊ गद्दी पर शांत बैठे थे।

"वह लड़की कौन है कुंवर!..." उन्होंने पूछा।

"मेरी सहपाठिनी है ताऊ!..." उदय ने साहस एकत्रित करके कहा—"गरीब है; माँ-बाप कोई नहीं है..."

"किस जाति की है ?"

"अपनी ही जाति की....दुखों के तूफान ने उसे बरबाद कर रखा है...." उदय ने कहा

"तुम उसे यहाँ क्यों लाये हो कुँवर !..." ताऊ ने पूछा।

उदय का शरीर काँप उठा।

"ताऊ ! मैं...मैं उसे .." वह कुछ कह ही न पा रहा था।

"साफ-साफ बोलो कुँवर ! क्या इरादा है तुम्हारा ?...." कुछ तेज स्वर में पूछा ताऊ ने !

"उससे शादी...ताऊ !...."

"तुमने अपने-आप ही सब कुछ कर लिया कुँवर ? बूढ़े ताऊ के लिए कुछ भी करने को न छोड़ा ?...इतने दिनों तक भूले-भूले से जो शहर में रहते आ रहे थे और मेरे पत्रों का उत्तर देने तक की फुर्सत नहीं मिलती थी तुम्हें, सो क्या इसी कारण ?"

"मुझे क्षमा करें ताऊ !..."

"देखो कुँवर !"...बोले ताऊ—"जो किया सो किया....उस लड़की को मन्दिर में कोई कमरा दिला दो; वहीं रहेगी वह..."

"मगर ताऊ .." हृदय पर वज्र रखकर बोला उदय।

"मैं जो कहता हूँ उसे करो तुम !..."

"उसका दिल दुखाना ठीक नहीं ताऊ..."

"चुप रहो !..." आवाज में और भी गम्भीरता लाकर बोले ताऊ—"तुम पागल बन गये हो...कुछ समझ नहीं सकते तुम....ठाकुर घराने की इज्जत धूल में मिलाने का इरादा है क्या तुम्हारा ?....जाओ जैसा कहा है, वैसा करो..."

ताऊ के स्वर में ऐसा तेज था, जिसके आगे उदय कुछ बोल नहीं सका।

सर लटका कर बैठक से बाहर हो गया।

उसके चले जाने के बाद ठाकुर भी उठे और हवेली के जनानखाने में आये।

बूढ़ी ठकुराइन, उदय की ताई, पूजा करने जा रही थीं मगर ठाकुर को देखकर रुक गईं।

"तुम्हारा उदय आ गया ठकुराइन !..." हंसकर बोले ठाकुर।

ठकुराइन के सामने वे अधिक गम्भीर न रह सके।

"आ गया !..." ठकुराइन ने कहा—"कहाँ है ! अभी तक हमारे पास क्यों नहीं आया ?...."

"वह अब तुम्हारे पास नहीं आएगा ठकुराइन !..."

"कैसी बातें कहते हो ठाकुर !...क्यों नहीं आयेगा वह ?..."

"शहर से वह अपने लिए एक दुलहिन लाया है..." बोले ठाकुर।

"दुलहिन !..." चौंककर पूछा ठकुराइन ने।

"हाँ...बड़ी सुन्दर-सी दुलहिन है....देखते ही मैं तो विस्मय से भर गया...मुझे देखते ही उसने घूंघट निकाल लिया...पढ़ी-लिखी है न ठकुराइन ! हमेशा तो घूंघट निकालेगी नहीं, केवल हम बड़े-बूढ़ों के सामने ही लज्जा करेगी...तुम देखोगी ठकुराइन उसे तो बलैया लोगी...तुम्हारा उदय तो बड़ा तेज निकला..."

"तुमसे कम थोड़े ही होगा ठाकुर !...मगर दुलहिन है कहाँ?"

"उसे मैंने मन्दिर में रहने की आज्ञा दे दी है !..." ठाकुर ने कहा।

"क्यों ?...घर की लक्ष्मी को घर के बाहर क्यों रखना चाहते हो तुम ठाकुर !..." ठकुराइन आश्चर्यमिश्रित स्वर में बोलीं।

"बड़ी भोली हो ठकुराइन !...भला ब्याह-शादी के पहले उसका इस घर में आना क्या ठीक है ?...लोग क्या कहेंगे ?...."

"लोग चाहे जो कुछ कहें....मैं अपनी बहू को घर से बाहर नहीं रहने दूँगी...मेरा पैर उसका आना सुनकर दुखने लगा है... आज शाम को उससे जी भरकर पैर दबवाऊँगी...."

"मैं जानता था कि तुम उतावली में पागल बन जाओगी, इसीलिए तुम्हें बताना नहीं चाहता था...."

"मगर अब तो बता दिया न ?....जाओ, सुफल को बुलाकर उसका मन्दिर में जाना रोक दो और जल्द से जल्द मेरे पास भेजो..."

"जैसी तुम्हारी मर्जी !..." कहकर ठाकुर बाहर आये।

"कुँवर कहाँ है ?...." उन्होंने सुफल से पूछा।

"बग्गी के पास बहूरानी से बातें कर रहे हैं।"—सुफल ने कहा।

"उस छोकरे को वहाँ से हटा दो....लाज-शर्म तो जैसे है ही नहीं उसमें...और सुनो, बहूरानी को धीरे से उतार कर हवेली में लाओ..."

"बहुत अच्छा सरकार !..."

कहकर सुफल चला गया।

उधर उदय कह रहा था नीरजा से—"तुम इस समय मन्दिर में जाकर रहो, मैं ताऊ को समझाऊँगा, प्रार्थना करूँगा....और अगर नहीं मानेंगे तो घर छोड़कर चल दूँगा..."

सुफल आ गया था और उसने आखिरी बात सुन ली थी।

बोला वह—"हाँ भाई हाँ ! अब के जवान तो ऐसे होते ही हैं, तुम भी ऐसे निकले, तो कोई अचरज नहीं कुँवर बेटा !... मगर अब यहाँ से खिसको तुम...लोग इस तरह बातें करते देखकर क्या समझेंगे ?...चलो बहुरानी बिटिया ! उतरो गाड़ी पर से..."

"कहाँ ले जाओगे इन्हें तुम ?...." उदय ने पूछा।

"तुमसे मतलब....क्या बहूरानी को अपनी जेब में भरे रहना चाहते हो कुँवर बेटा ?....बहूरानी हवेली में जायेंगी और कहाँ ?"

"किसने कहा है ?...."

"कुँवर बेटा, तुम तो जिरह करने लगते हो..." बोला सुफल—"ताऊजी ने कहा है और कौन कहेगा ?...जरा दरवाजा छोड़कर खड़े हो जाओ, बहूरानी को उतारने तो दो..."

"अभी तो ताऊजी इन्हें मन्दिर में रखने को कह रहे थे..." उदय ने कहा।

"अरे भाई! कह दिया होगा...भीतर आकर ठकुराइन की डाँट जब पड़ी है तो सट्ट से बदल गये...."

"ठीक है!...." मुस्कुरा कर बोला उदय—"ले जाओ अपनी बहूरानी को....जरा सँभाल कर ले जाना सुफल काका इन्हें..."

"क्यों?...क्या बात है कुंवर बेटा!"

"इनके पर हैं....कहीं रास्ते से छू-मन्तर न हो जायँ इसीलिए सँभाल के रखना अच्छा होगा—"

"बहूरानी को बाँधने के लिए तुम किस रस्सी से कम हो कुंवर बेटा!...."

"तो ठीक है...मैं ही इन्हें बाँधता चलूंगा..." उदय ने कहा।

"चलिये, आप बड़े वैसे..." घूंघट की ओट से तीर फेंकते हुए नीरजा ने धीरे से कहा।

"लो सुफल काका!...."

"क्या है कुँवर बेटा!"

"तुम्हारी बहुरानी तो कहती हैं कि यह पतली-सी रस्सी ठीक नहीं है...कोई मोटा-तगड़ा रस्सा चाहिये..."

"कुछ दिन सब्र करो..." बोला सुफल—"बहुरानी के हाथ की मीठी-मीठी रोटी खाकर जल्द ही गामा बन जाओगे..."

इस बात पर उदय और नीरजा दोनों मुस्करा उठे।

"आओ बिटिया!...उतरो...यह कुँवर तुम्हें उतरने नहीं देना चाहता!..."

धीरे से नीरजा बग्गी से उतरी।

आगे-आगे सुफल चला और उसके पीछे-पीछे सात अँगुल का घूँघट काढ़े नीरजा।

सँभाल-सँभाल, धीरे-धीरे पग रख रही थी वह, परन्तु यौवन के भार से पैर कभी-कभी लड़खड़ा पड़ते थे।

सिमटने-सिकुड़ने पर भी सौन्दर्य छिटका पड़ रहा था।

जमीन की धूल, उन कोमल पैरों का आलिंगन कर, प्रेमावेश से उन्मत्त होकर हाय-हाय कर रही थी।

और वायु के झोंके, लहराती हुई कमर की एक-एक लहर पर चंचल-से हो उठते थे।

पीछे-पीछे उदय भी आ रहा था।

उसे आता देखकर सुफल बोला—"तुम कहाँ आ रहे हो कुंवर बेटा!..."

सुनकर उदय शरमा-सा गया।

कहा उसने—"मैं भी हवेली में चल रहा हूँ...."

"किसलिए?..."

"अपने कमरे में चला जाऊँगा..." उदय ने कहा।

"देखो कुंवर!..." बोला सुफल—"यह गुड़-चींटे वाली आदत मुझे जरा भी पसन्द नहीं..."

"मगर तुम्हारी बहूरानी को यह पसन्द है..." उदय ने कहा।

"तुम चलकर बग्गी के पास खड़े रहो...चलो, चलो!..." सुफल बोला।

"क्यों सुफल काका?..."

"तुम भी चले आओगे तो सामान कौन देखेगा?..."

"अच्छा लो, मैं जाता हूँ।"

और उदय चला गया।

घूँघट की ओट से नीरजा हवेली की साज-सजावट देखती जा रही थी।

जनानखाने के द्वार पर पहुंच कर सुफल बोला—

"चली जाओ भीतर बिटिया!...यही तुम्हारी सास का कमरा है..."

कहकर सुफल चला गया।

नीरजा वहीं ठमकी हुई खड़ी रही।

उसके पैर आगे उठते ही न थे।

सोचने लगी थी वह—

कैसी होंगी उसकी सास ?—

उसे पकड़कर हृदय से लगा सकेंगी या नहीं ?

उसी समय एक दासी ने आकर उसे अपने अंक में ले लिया और लिवा ले चली।

ठाकुर और ठकुराइन एक ही कमरे में बैठे थे।

नीरजा को देखते ही बोले ठाकुर—"लो ठाकुराइन ! आ गई तुम्हारी बहू !..."

ठाकुर का स्वर सुनकर नीरजा ने और भी घूंघट खींच लिया।

ठकुराइन ने आगे बढ़कर नीरजा के सिमटे हुए शरीर को अपने वृद्ध वक्ष से लगा लिया।

नीरजा ने झुककर ठकुराइन के पैर छुए।

"जीती रहो बहू !...चांद की चमक की तरह तुम्हारा सुहाग अमर हो..." सास ने आशीर्वाद दिया—"अपने ससुर के भी पैर छुओ बहू...."

"नहीं बहू !....अपनी सास के ही पैर दबाओ....मेरे पैर तो दुखते ही नहीं...."

हँसकर बोले ठाकुर।

परन्तु नीरजा ने उनके पैर पकड़ ही लिए।

हर्षावेग से वृद्ध ठाकुर की आँखें बरस पड़ीं।

"उठो बिटिया !"—बोले वे—"अब इस बूढ़े के पास क्या रखा है ?...जो कुछ था सो तो तुम्हें दे ही चुका...यह कहो कि तुमने खुद ही छीन लिया मुझसे..."

नीरजा ठकुराइन के पास जा बैठी।

ठकुराइन ने घूंघट सरकाकर उसका मुख देखा।

"ठाकुर !....तुम्हारी बहू तो जैसे कुलबेरा का फूल है...सच कहती हूँ...इसे किसी तालाब में रख दो तो खिल जाय..."

"तो ले जाकर रख दो किसी तालाब में..." हँसकर बोले ठाकुर।

"हमारा कुँवर किस तालाब से कम है ठाकुर!...वही इस कुलबेरा को खिलायेगा...." ठकुराइन ने कहा।

नीरजा उन बूढ़ों की बातें सुनकर लाज से गड़ी जा रही थी।

उसे सन्तोष था कि उसके सास और ससुर--दोनों पानी की तरह तरल थे।

उसी दिन--

घड़ी रात गये तक गाँव की स्त्रियों का ताँता लगा रहा, हवेली में। सभी नीरजा को देखने आ रही थीं।

और नीरजा की लज्जा हर क्षण, एक की दो और दो की चार हुई जा रही थी।

कालेज में अलबेले लड़कों के मध्य खुले मुँह घूमने वाली युवती; उस वातावरण में आकर स्वयं लज्जा की प्रतिमा बन गई थी।

किसी तरह दिन बीता, शाम हुई।

और शाम भी रात के दामन में अपना मुँह छिपाकर सो चली।

अनजान व्यक्तियों के बीच कई घण्टों तक रहने से नीरजा घबरा उठी थी और वह उदय से मिलना चाहती थी।

उधर उदय भी उससे मिलने के लिए वेताब हो रहा था परन्तु ग्रामीण सभ्यता एवं व्यवहार उसे रोक रहे थे। गुरुजनों का भय भी था।

इसीलिये चाहते हुए भी तीन-चार दिनों तक नीरजा और उदय-एक दूसरे से नहीं मिल सके।

इस बिछुड़न में उन दोनों का आकर्षण और भी बढ़ गया।

साथ ही वैकल्य भी बढ़ चला।

रह-रहकर कलेजे में सुमधुर टीस उभरने लगी।

और पाँचवें दिन, जब उदय रात्रि में भोजन करते हवेली में

जा रहा था तो नीरजा को उसने देखा।

गलियारे में सुनसान था।

सो उदय ने हाथ फैलाकर उसका रास्ता रोक रखा।

"मुझे जाने दीजिये..." धीरे से कहा नीरजा ने।

"अब तो तितली ने भी पर फैलाना सीख लिया—क्यों रानी..." कहकर उदय ने नीरजा के आरक्त कपोलों पर धीरे से चुटकी काट ली।

और उस छोटी-सी चुटकी की वेदना, नीरजा की सजग रगों से दौड़कर कोमल कलेजे तक जा उतरी।

उस मीठी वेदना की उन्मत पीड़ा से घबराकर जब नीरजा ने भागना चाहा तो उदय ने लपक कर उसे भरपूर जकड़ लिया।

"मुझे छोड़ दीजिये..." विनय भरे आकर्षक स्वर में बोली वह।

"अब तुम छूट नहीं सकती नीरजा !" बोला उदय—"दूर-दूर रहकर तुमने अपने शरीर में चाँद जैसा आकर्षण भर लिया है... अब तुम्हारे आकर्षण में शान्ति नहीं है, उन्मादकारी तूफान है... मुझे तुमने पागल बना दिया है रानी !..."

पुरुष की जबान जितनी तेज होती है, उतना ही कोमल होता है नारी का हृदय !

सो यहाँ भी नारी ने पुरुष के आगे हार स्वीकार कर ली।

और होठों पर मादक-युद्ध के चिह्न लिये हुए वह लौटी।

• •

प्रातःकाल सूर्य निकलते ही, शिवजी के मन्दिर से घण्टे की आवाज और शंखध्वनि सुनाई पड़ी, जिससे ग्रामवासी सजग हो गये और जो जहाँ था, वही से उसने हाथ जोड़; आँख मूँद, सर झुकाकर शिवजी का ध्यान कर लिया।

छोटे-छोटे बच्चे शंखध्वनि से आकर्षित होकर मन्दिर की ओर दौड़ चले।

उसी समय बग्गी के पहियों की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी।

और दरवाजे पर बैठे हुए नौकर ने बच्चों से कहा।

"चुप रहो तुम लोग, कुंवर साहब आ रहे हैं...और करोगे तो कान पकड़कर निकाल देंगे...."

उदय बग्गी से उतर कर सीधे पूजन-गृह की ओर बढ़ा।

मन्दिर के प्राङ्गण में आकर वह खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर, चुपचाप।

कितने अन्य लोग भी वहां उपस्थित थे।

शंखध्वनि बन्द हो गई थी और शिवजी के मस्तक पर बेल-पत्र चढ़ाये जा रहे थे।

धूप की सुगन्धि फैल रही थी चारों ओर।

भक्तगण चुपचाप आँख मूँदे हुए खड़े थे, भक्तिसागर में गोते लगाते हुए।

उदय भी एकाग्रमना होकर उस शान्त वातावरण में निश्चल हो खड़ा था।

पूजन समाप्त हुआ तो कीर्तन प्रारम्भ हुआ।

करतालें झनझना उठीं।

भक्तगण उस वाद्य के तालों पर झूम-झूम उठे।

किसी सुमधुर कण्ठ ने कीर्तन प्रारम्भ किया—

शिवशंकर ! जय शिवशंकर !
जय अविनाशी शिवशंकर !

भक्तगण भक्ति की प्रेरणा से उत्फुल्ल-से हो उठे।

परन्तु कीर्तन के उस सुमधुर स्वर में, यौवन का बहता हुआ प्रवाह पाकर उदय ने अपनी आँखें खोल दीं और कीर्तन-कर्ता की ओर देखा।

अब तक उसने शिवजी की मूर्ति की ओर ध्यानपूर्वक निहारा भी नहीं था।

अब जो देखा तो देव-मूर्ति के पास ही भव्य-मूर्ति उपस्थित थी।

हाथ में करताल था और गौरांग शरीर पर लालित्य लोट

रहा था।

और वह ललाई, विभोर होकर झूमने से और भी निखरी पड़ रही थी।

नारी की वैसी भव्य मूर्ति उदय ने कभी देखी न थी।

शरीर पर गेरुआ वस्त्र था, सर के नागिन जैसे बाल खुलकर पीठ पर खेल रहे थे। कण्ठ में रुद्राक्ष की माला थी।

और अवस्था थी १७-१८ वर्ष के लगभग !

एकटक देखने लगा उदय उस मनोहरी प्रतिमा को, जो आंख मूँदे भूली हुई-सी कीर्तन में निमग्न थी।

भक्तजनन-प्रतिपालक, जय हे !
जय प्रलयंकर शिवशंकर !

उदय की पलकें देर तक खुली की खुली ही रहीं।

और जब बन्द हुईं तो शिवजी की प्रतिमा का ध्यान छोड़कर; वह उस भव्य मूर्ति के चिन्तन में लीन हो गया।

यह कौन है ?

पुजारी की बेटी, नगीना ही तो है यह !

परन्तु एकाएक यह इतनी बड़ी कैसे हो गई ?

और इसके चेहरे पर इतना तेज कैसे आ पड़ा ?

अभी कल तक तो यह चञ्चल पंछी की भांति बगीचे की डाल-डाल पर घूमा करती थी —

और आज जो उदय देख रहा हैं तो पाता है कि बचपन का वह चाञ्चल्य विलीन हो गया है और यौवन-जनित आकर्षण एवं गम्भीरता आ विराजी है।

उदय और पुजारी की बेटी नगीना, दोनों बचपन के साथी।

दोनों साथ-साथ आँखमिचौनी खेले हैं, इसी शिवमन्दिर के चबूतरे पर, इसी बगीचे की गोद में।

और बगीचे का कण-कण उनकी उल्लसित किलकारी से अबतक गूंज रहा है जैसे।

बचपन के वे दिन भी कितने सरस थे।

एक दिन उदय और नगीना साथ-साथ खेल रहे थे, सात-आठ साल पहले, तो उन्होंने सुना, नगीना विधवा हो गई है।

विधवा !—

जीवन भर का दुःख और युगों तक चलने वाली सतत साधना—यही वैधव्य के आधार हैं।

वासना एवं प्रेम में कोई सम्बन्ध नहीं।

परन्तु उस समय दोनों में से किसी को दुःख नहीं हुआ।

बचपन की क्रीड़ा के मध्य; वैधव्य की परिभाषा कौन जानता है ?

परन्तु आज, जब उदय और नगीना दोनों जवान हो गये हैं तो नगीना का माधुर्य देखकर उदय सोच रहा है कि वैधव्य में इस नितान्त सरल युवती के दिन कैसे व्यतीत होंगे ?

सोचते-सोचते कसक उठा हृदय।

बचपन के साथी के प्रति एक अगम पीड़ा का भाव-मन्थन रूप आ उपस्थित हुआ।

क्या नगीना यों ही जीवन भर तक कीर्तन करती रहेगी और भक्तों के हृदय में अपनी वाणी द्वारा भक्ति का संचार करती रहेगी ?

क्या उसके नेत्रों के समक्ष माधुर्य का कोई भी मूल्य नहीं रह जायगा ?

सोचता रह गया उदय।

कीर्तन वेग से हो रहा था—

आनन्द विधायक भूतनाथ हे !
विषधर धर, जय शिवशंकर !

उदय ने पुनः अपनी आँखें खोलीं।

देखा—भोली पुजारिन का शरीर झूम रहा था, रह-रहकर झूम रहा था और मुख से शिवजी का स्तुति-गान प्रसारित हो

रहा था।

गोरे-गोरे हाथों की करताल बजती चली जा रही थी।

और बजते-बजते सहसा झन्नाटे के साथ रुक गई!

पुजारिन का कोमल शरीर 'शंकर-शंकर' कहता हुआ प्रलयंकर शंकर के चरणों पर लोट गया।

यौवन मद से व्याकुल, वैधव्य से दुखी एवं वासना से प्रताड़ित वह सौन्दर्यमयी युवती शंकर की शरण में जा पड़ी--सब कुछ भूल जाने के लिए।

और इसके बाद उदय ने जो कुछ देखा, उससे वह आश्चर्य-चकित हो उठा।

उसने देखा कि अचेत-सी पड़ी हुई पुजारिन ने अपना कोमल हाथ बढ़ाकर, धतूरा-पात्र उठा लिया।

और उसे होठों से लगाकर शिवजी का प्रसाद, वह सारा धतूरा पी गई।

भक्तगण बोल उठे--"जय माँ पार्वती!..."

और भक्तजनों की वह माँ, वह पार्वती, उदय की आँखों में नगीना बनकर खटक उठी, कसक कर रह गई।

गुरुजनों द्वारा नीरजा से दूर रखा जाने वाला उदय, इस समय नगीना में जो आनन्द पा रहा था, वह उसे नीरजा में भी न मिला था।

नगीना की सौम्य-मूर्ति, नियन्त्रण एवं कठोर तप से तपकर और भी निखर आई थी।

इतना विष पी जाने पर भी जो नगीना नीलम की तरह चमकती रह जाती है वह वास्तव में नागिन है!

जहर पीकर जहर उगलने वाली नागिन नहीं–

विष पानकर, सुधा बिखेरने वाली नागिन!

और ऐसी नागिन को देखकर उदय भी विषपान करना चाहने लगा।

चाहने लगा कि यह भोली नागिन, जो बचपन के दिनों में उससे लिपटकर खेल खेला करती थी, अब जवानी के दिनों में उसे डँसे—उससे लिपट-लिपटकर डँसे खेले...

धतूरा पीते ही पुजारिन की आँखें स्थिर हो गईं।

शरीर का पोर-पोर स्थिरता से निश्चल हो पड़ा।

वह उठी और बिना किसी ओर देखे हुए डगमगाते पगों द्वारा अपने प्रकोष्ठ में चली गई।

धीरे-धीरे सभी दर्शकगण चलते बने।

परन्तु उदय उसी स्थान पर खड़ा रहा, ध्यानमग्न, चिन्ताग्रस्त।

फिर सजग होकर नगीना के प्रकोष्ठ की ओर बढ़ा।

प्रवल आकर्षण से आहत होकर, वह उससे कुछ वार्तालाप करके अपने धधकते हुए हृदय को शान्त करना चाहता था।

दरवाजे पर पहुँचते ही उसे किसी का तेज धक्का लगा।

भीतर से नीची नजरें किए हुए नगीना आ रही थी और बाहर से भूला-भूला-सा उदय भीतर जा रहा था।

सो दोनों बादलों की तरह टकरा पड़े।

नगीना, विषपान से मत्त पुजारिन गिरते-गिरते बची।

"देखकर नहीं चलते आप!"—शुष्क स्वर में नगीना ने कहा। उसकी नजरें नीची ही रहीं।

आँख उठाकर देखना और अन्तर में वैकल्य भर लेना, यही नहीं चाहती थी नगीना।

"क्षमा करना नगीना!..." उदय बोला।

उसका स्वर सुनकर नगीना ने विस्मय से अपना सर उठाया और जड़वत् नेत्रों से उदय को बड़ी देर तक निहारती रही।

आँखें केवल आधी ही खुली थीं, जिनसे धतूरे का विष झाँक रहा था।

एकाएक उदय को पहचान कर मादक मुस्कान उसके रक्ताभ

अधरों पर नाच उठी।

धीरे से बोली वह—"अरे, तुम हो कुँवर! कब आये!"

"कई दिन हुए आए मगर तुम्हें आज ही देख सका नगीना..." कहा उदय ने।

नगीना स्थिर नेत्रों से उदय की ओर देख रही थी। पलकें निश्चल थीं—दृष्टि भावशून्य थी।

"अब तो तुम काफी बड़े हो गये कुँवर!..." बोली नगीना।

"तुम भी तो बड़ी हो गई...मैं तो पहचान ही न सका..."

"क्यों पहचानोगे भाई!...बचपन के दिन तो अब बीत चुके हैं न?" वैकल्य-सा भरा था नगीना के स्वर में।

जिससे उदय तड़प उठा।

कितनी दुखी है यह नगीना!

एक तो वैधव्य का दुख, दूसरे यौवन का प्रबल आवेग।

और इन्हीं सबको भूलने लिए तो वह विषपान करने लगी है।

नगीना, अब नागिन बन गई है!

"तुममें बहुत परिवर्तन आ गया है नगीना!..."

"यह परिवर्तन लाने के ही लिये तो धतूरा और संखिया पीने लगी हूँ कुँवर! सोचती हूँ, विष की विस्मृति में ही ये तूफान के दिन बीत जायँ तो ठीक है..."

"क्या पुजारी बाबा इस बात को जानते हैं?" उदय ने पूछा।

"किस बात को?..."

"तुम्हारे विष-पान के विषय में..."

"जानते हैं?...यह उन्हीं की दवा है कुँवर!....आओ, अन्दर बैठो, खड़े कब तक रहोगे?...."

"चलो..."

भीतर आकर उदय चारपाई पर बैठा और नगीना कुशासन पर।

उदय नगीना को एकाग्र-दृष्टि से देख रहा था और नगीना

की दृष्टि भी स्थिर थी उदय की मुखाकृति पर।

"उदय!..." एकाएक बोली नगीना—"तुम अपनी दृष्टि नीची कर लो...."

"क्यों?...."

"मुझे लगता है, जैसे धतूरे से भी तीव्र विष भरा है तुम्हारी आँखों में, मेरा हृदय जलने लगा है..."

"यह अनुभूति तुम्हारे लिए नई है क्या नगीना!..."

"बिल्कुल नई!....मगर मैं धतूरा छोड़कर किसी की नजरों का विष पीना नहीं चाहती कुँवर! ...वे दिन गये...और अब जो दिन आये हैं, उनको बिताने के लिए मुझे मानसिक शान्ति चाहिए..."

"इतनी कठिन तपस्या तुमसे न निभेगी पुजारिन!" उदय ने कहा।

"तुम भी ऐसा कहते हो कुंवर!....बचपन के साथी! तुम भी मुझे आज निराश करने आये हो..."

"नहीं नगीना! मैं तुम्हें निराश करना नहीं चाहता परन्तु यह सत्य है कि तुम्हारी अवस्था इस समय योग साधन की नहीं है..."

"जो भी अवस्था हो मेरी!"—पुजारिन ने कहा—"मगर तुम्हारे आने के पहले मुझे उसका तनिक भी ज्ञान नहीं था...तुम आये हो तो ऐसा लगता है, जैसे अपने साथ मादकता, वैकल्य और पहेली जैसी उलझन लेते आये हो, जिससे मैं विचलित हो उठी हूँ..."

"वह चबूतरा देख रही हो नगीना!..."

"देख रही हूँ मगर तुम्हारे सामने उसे देखना नहीं चाहती..." बोली नगीना।

"क्यों?...इसीलिए न कि वह उन मधुर दिनों की स्मृति है, जब तुम मेरी गोद में लेटकर, चाँदनी रातों में आकाश के तारे गिना करती थी...जब तुम मेरी पीठ पर चढ़कर, नीचे

से ऊपर और ऊपर से नीचे कूदा करती थी..."

"चुप रहो कुँवर !...तुम्हारी बातें विषैली हैं....क्या कर तुम चुप रहो !" हाँफती हुई बोली नगीना। उसके नेत्र मुँद गये थे। साँस की गति बढ़ चली थी।

मगर उदय इस समय अतीत-स्मृति से चलायमान-सा हो उठा था।

कहता गया वह—"और एक बार जब मैंने तुम्हें अपनी पीठ पर चढ़ाने से इनकार कर दिया था तो तुमने क्रोधित होकर..."

"उफ् ! कुँवर तुम क्या चाहते हो ?...क्यों मेरी तपस्या में, विस्मृति में, ज्वालामुखी की सृष्टि कर रहे हो !"

"तो तुमने क्रोधित होकर; मेरी गर्दन में अपने दाँत धँसा दिये थे—खून बह चला था..." उदय कहता जा रहा था !

"शंकर ! शंकर !..." कान में उँगली डाल लिया नगीना ने—"बके चलो कुँवर ! मैं कुछ भी सुन न सकूँगी...शिवशंकर ! प्रलयंकर !...."

"तुम्हें सुनना ही पड़ेगा नगीना !...." कहकर उदय ने उसकी कलाई पकड़ ली और हाथ खींचकर उसके कान खोल दिये।

"तुमने मुझे आखिर डँस ही लिया विषधर कहीं के !...." बोली नगीना—"मगर याद रखो कुँवर ! अगर उस दिन की तरह आज भी मैं तुम्हारी गर्दन में अपने दाँत धँसा दूँ तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है....विषपान करते-करते मैं नागिन बन गई हूँ ..."

"इस अवस्था में देखकर आज मैं तुम्हारी भयंकरता भूल गया हूँ नगीना ! तुम मेरे लिए वही हो—एकदम वही...."

"तुम मुझे नष्ट करने पर तुल गये हो कुँवर !..." कहते-कहते नगीना की आँखों में विष उतर आया, आकृति भयानक हो उठी—"तुमने मेरी साधना को ठोकरें मारकर, दबी पड़ी हुई वासना को सजग कर दिया है...मेरी तपस्या को नष्ट कर, तुम मेरे साथ बचपन का खेल खेलने आये हो कुँवर !...."

नगीना की आकृति देखकर उदय अवाक् हो रहा था।

"खेलूँगी .. अपना बन्धन तुड़ाकर मैं तुम्हारे साथ खेलूँगी... उठो! बचपन के साथी! आओ!--एक बार फिर तुम्हारे शरीर से लगकर उन दिनों की याद ताजा कर लूँ...."

नगीना ने उदय का हाथ पकड़ कर उठाया।

वह इस समय पागल जैसी हो रही थी।

नियन्त्रण नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और यौवन वासना की ठोकरें खाकर चीत्कार कर रहा था।

उदय को परिस्थिति की भयंकरता का ज्ञान तब हुआ जब उसने देखा कि पुजारिन के मुख का सारा तेज, भयानक अरुणिमा धारण कर चुका है—गेरुए वस्त्र चारपाई पर अलग पड़े हैं और उसका उन्मत्त यौवन उदय के शरीर से लगकर सिसकियाँ भर रहा है।

"नगीना!....अपने को सँभालो नगीना!..."

"मैं सँभलना नहीं चाहती हूँ कुँवर!...तुम मुझे गिराना चाहते हो और मैं गिरने को तत्पर हूँ!..."

"छोड़ दो मुझे—दरवाजा खुला है।" उदय ने कहा।

"मैं बन्द किये दे रही हूँ!"

नगीना ने लपक कर दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया।

बोली—"डरो नहीं! पुजारी बाबा बाहर गये हुए हैं... दो-चार दिन से पहले न लौट सकेंगे...."

"मगर..."

"कुँवर! दिन के उजाले में हम-तुम नहीं मिल सकते परन्तु यहाँ तो रात्रि जैसा अन्धकार है...तुम खेलना चाहते हो न?... आओ! मुझे विचलित करके अब तुम पीछे नहीं हट सकते... निष्ठुर! तुमने मेरी युगों की तपस्या छीन ली...मेरा अचल हिमालय आज डोल उठा है...धतूरा पी-पी कर मैं जिस वासना को भूल बैठी थी, उसे तुमने मदिरा पिलाकर जाग्रत कर दिया है..."

नग्न तरुणी उदय के शरीर पर लता बन गई।

उसके वक्ष का एक-एक स्पन्दन, इसके कमर की एक-एक थिरकन, उदय के निकट साकार हो उठी।

साधना का बन्धन फेंककर, वासना के आवेग से अन्धी बनी हुई पुजारिन, आज देवता का दासत्व छोड़कर, यौवन की दासी बन बैठी थी!

सघन अन्धकार ने झिलमिलाती आँखें फाड़कर, उस उन्मत्त देवदासी का नग्न-नृत्य देखा!

प्रकोष्ठ की दीवारों ने अपने कान बन्द कर लिये--वासना के उस ताण्डव का रोर सुनना उनके लिए असम्भव था।

एक क्षण पहले क्या था—और दूसरे ही क्षण क्या हो गया?

दरवाजा खुला तो उदय का मुख पीला पड़ गया था। वह इतना आगे बढ़ना कभी नहीं चाहता था।

परन्तु नियति का चक्र रुक तो सकता नहीं।

नगीना भी अस्त-व्यस्त हो गई थी।

सर के बाल बिखर गये थे।

आँखों से अब भी अतृप्त वासना झाँक रही थी, जिस पर धीरे-धीरे पश्चात्ताप का रंग चढ़ रहा था।

मुख का तेज श्यामल हो गया था।

आँखों का नशा लुप्त-प्रायः था।

पश्चात्ताप से विदग्ध होकर बोली वह--

"निर्दयी! खेलने आये थे सो खेल चुके न?...देवदासी का तप भ्रष्ट कर अपने मन की कर चुके न!...अब खड़े क्यों हो?... जाते क्यों नहीं?...निकल जाओ यहाँ से..."

नगीना ने उदय को ढकेल कर कोठरी से बाहर कर दिया और फटाक से दरवाजा बन्द कर लिया।

उदय कुछ देर तक द्वार पर खड़ा रहा और भीतर से आती सिसकियों की आवाज सुनता रहा।

वह स्वयं भी ग्लानि से भर उठा था।

उसने भोली नीरजा के साथ आज बहुत बड़ा विश्वासघात किया था।

परन्तु यह नगीना, स्वयं अपने को नष्ट करके सिसक रही है। वह अपने पतन का भार उदय के ऊपर डालना चाहती है।

मगर उदय यह नहीं जानता था कि वासना की चिनगारी नारी के अन्तराल में हर समय छिपी बैठी रहती है और पुरुष से तनिक सा प्रोत्साहन पाकर, ज्वालामुखी बन फूट निकलती है।

नारी को पतन-मार्ग पर ले जाने वाला पुरुष ही तो है!

पुरुष, जब नारी को विचलित करके स्वयं पीछे हटने लगता है तो वह नारी के लिए असह्य हो जाता है और वह विक्षिप्त प्रायः होकर स्वयं गिरती है और पुरुष को भी गिराती है।

नगीना, जो अब तक तृप्ति जानती ही न थी और अतृप्ति को ही सन्तुष्टि समझ लेती थी, तड़पन में ही शान्ति खोज लेती थी—अब उदय से वास्तविक तृप्ति पाकर बेचैन-सी हो उठी थी।

उस बेचैनी में सुख भी था और वेदना भी।

वह एक मादक अनुभूति थी इसीलिए नगीना सिसक रही थी।

हवेली आकर उदय अपने कमरे में जाकर पड़ रहा। कुछ खा-पी नहीं सका ग्लानि के कारण।

उसका हृदय अत्यन्त उद्विग्न था।

इस समय उसे नीरजा का अभाव खटक रहा था परन्तु नीरजा शादी के पहले उससे स्वच्छन्दतापूर्वक मिल भी नहीं सकती थी।

इतना पास होते हुए भी दोनों आकाश जैसी दूरी पर जा पड़े थे—न कोई किसी से मिल सकता था न हँस-बोल सकता था।

इस दूरत्व ने ही तो उदय के हृदय से नीरजा का प्रेम क्षीण कर दिया था और यही कारण था कि मन्दिर में नगीना की सौम्य मूर्ति ने उसे आकर्षित कर लिया और उसने ऐसी-ऐसी

मारक बातें कहीं कि दोनों अनुभवरिक्त प्राणी पतन के गड्ढे में आ गिरे।

उदय पुरुष था और पुरुष जैसी भ्रमर-प्रकृति उसने पाई थी। भ्रमर जब तक एक कली के पास रहता है, तभी तक उसे उसकी चाह रहती है। बाद को दूसरी कली के पास उड़ जाने पर वह अपना पिछला प्रेम भूल जाता है।

उदय भी इस समय अशान्ति के महासागर में जा पड़ा था। वह कभी नीरजा के स्निग्ध प्रेम की बात सोचता—और कभी नगीना के उबलते हुए प्रेम को सोचकर उसका हृदय एक मधुर गुदगुदी से भर जाता।

नगीना ने किस आकस्मिक ढङ्ग से उसके आगे घुटने टेक दिये—उसकी कठोर तपस्या ने किस बेकली के साथ वासना की गोद में आत्मसमर्पण कर दिया था, यही सोच-सोचकर उदय का मस्तिष्क झंझावात से आक्रान्त हो उठा है।

अभी-अभी वह जिस मधुरिमा का स्पर्श करके आ रहा है, वैसा स्पर्श क्या कभी नीरजा से वह पा सका है।

दूर-दूर रहने वाली नीरजा. यद्यपि उसके हृदय के अत्यन्त निकट थी परन्तु इस समय तो नगीना के शरीर की निकटता ने वह सब कुछ नष्ट कर दिया है।

यदि इस समय नीरजा आ जाय तो कदाचित् उदय सभी कुछ भूल जा सकता है और नीरजा के न आने से वह पतन के गर्त में बढ़ता ही जायगा।

पुरुष में प्रेम के साथ-साथ तृप्ति का भी आवेश होता है, वासना का उद्वेग होता है——

और जब गुरुजन, युवकों की इस प्रवृत्ति को न समझकर उन्हें तृप्ति से दूर रखना चाहते हैं, तभी वे उच्छृङ्खल ही उठते हैं और तृप्ति का मार्ग खोजते-खोजते शुद्ध गंगाजल के स्थान पर पनाले का पानी पीने लगते हैं।

उधर नगीना की भी अवस्था विचित्र हो रही थी।

अपनी साधना भंग हो जाने पर उसे पश्चाताप था परन्तु यौवन की उस मादक तृप्ति की याद आते ही उसका शरीर सिहर उठता था।

उसकी वासना, जो इस तरह ज्वालामुखी का रूप धारण कर भभक पड़ी थी, तृप्ति की एक बूंद से बुझने वाली न थी...

वह तृप्ति का सागर चाहती थी।

यौवन वासना से लिपटकर खड़ा था और आतुर भङ्गिमा द्वारा तृप्ति माँग रहा था।

दूसरे दिन !--

शिवपूजन के समय नगीना का हृदय काँप रहा था।

वह कलङ्किनी थी--उसका शरीर अब देवता का नहीं था-उदय का था।

वह उदय, जो इस समय भी मन्दिर के बीच में सबसे आगे हाथ जोड़े खड़ा था और बगुला भगत-सा बना हुआ शिवजी का ध्यान कर रहा था।

किसी तरह नगीना ने पूजन कीर्तन समाप्त किया।

जब उसने प्रकम्पित हाथों द्वारा धतूरे का पात्र उठाया तो उसका शरीर रोमांचित हो उठा।

वह तीव्र विष आज वह किस प्रकार पान कर सकेगी? तपस्या के अक्षुण्ण रहने पर जो विष उसके लिये सुधारस बन जाता था, वही आज कलंक-कालिमा से और विषैला होकर उसे मृत्युद्वार तक पहुँचा देगा और वह सब कुछ त्याग कर निर्जीव बन बैठेगी।

उसकी तृप्ति अधूरी रह जायगी।

उसकी कामना सिसकियाँ भरती हुई मृत्यु का आलिंगन करेगी।

धतूरे का पात्र उसके होठों तक पहुँच चुका था।

कि सन्नाटे की तीव्र आवाज हुई और वह पात्र जमीन पर गिरकर तड़प उठा।

नगीना ने अपने नेत्र मूंद लिये और भागकर अपने प्रकोष्ठ में चली गई।

दर्शकों में से किसी ने कहा—"आज माँ का हृदय चञ्चल है..."

आपस में कानाफूसी करते हुए दर्शक चले गये।

उदय तब भी वहीं खड़ा रहा।

उसने एक बार शिवजी की प्रतिमा की ओर देखा।

काँप उठा वह। उसे ऐसा लगा, जैसे विनाशकर्त्ता प्रलयङ्कर ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर उसकी ओर देखा हो।

जैसे एक अस्पष्ट-सी गम्भीर आवाज उसके कानों में सुनाई पड़ी हो—

"तुमने मेरी दासी को पथ-भ्रष्ट किया है! तुम कभी सुख नहीं पा सकोगे....तुम तड़पोगे, सिसकोगे, पश्चात्ताप के ज्वालामुखी में जल मरोगे..."

उदय ने अपने कान मूँद लिये और मन्दिर से बाहर निकला वह।

नगीना के पतन पर उसे पश्चात्ताप था।

सोच रहा था वह—भीषण आग को अन्तर में दबाये हुए यह युवती, कल इस समय कितनी शान्त थी?

परन्तु आज अस्थिर होकर विक्षिप्त बन बैठी है!

निधि लुटाकर निधिहीन हो पड़ी है।

उफ्! उसने नगीना के साथ कितना बड़ा अन्याय किया है?

उसने उसका व्रत तोड़ डाला है—उसे पथभ्रान्त बनाकर असहाय छोड़ दिया है—अब संसार में उसका कौन है?

उसका व्रत टूटा!

शान्ति भङ्ग हुई!

वासना उठ बैठी!

यौवन तड़प कर सजग हो गया—
सो इसमें किसका दोष है ?—
उदय का ही तो ?
वह जाकर नगीना को धैर्य बँधायेगा।
उसने नगीना को अपनाया है तो अपनाये ही रहेगा।
दुनियाँ हंसे—
चाहे थूके।
मगर वह अटल रहेगा।
क्या एक पुरुष दो नारियों का पालन नहीं कर सकता !
क्या पुरुष का एक सहारा, दो बेसहारों के लिए पर्याप्त नहीं है ?

जब उदय नगीना के प्रकोष्ठ में घुसा तो वह बेहोश जैसी चारपाई पर अस्त-व्यस्त लेटी हुई थी।

वक्ष पर से वस्त्र हट गये थे परन्तु उसे तनिक भी ध्यान नहीं था।

उदय जाकर चारपाई पर बैठ गया।

नगीना उसी तरह पड़ी रही।

जरा भी हिली-डुली नहीं। आँख भी नहीं खोला उसने। जैसे अन्तर की आँखों से ही समझ गई हो कि कौन आया है।

उदय ने वस्त्र खींचकर उसका वक्ष ढंक दिया।

बोला—"नगीना !"

नगीना के नेत्र खुले तो उसमें से अगम वैकल्प निकल कर चारों ओर छिटक उठा, फैल गया।

"कुँवर ! क्यों आये हो यहाँ ?..." नगीना ने स्थिर नेत्रों से उदय के मुख की ओर देखते हुए पूछा।

"क्या यह भी बताना पड़ेगा नगीना !"

"तो तुम पहेली बुझाने आये हो छोटे राजा !"—बोली नगीना, स्वर में आर्द्रता आ गई थी—"अभी कल एक पहेली बुझा गये, उसकी उलझन में पड़कर मैं तड़प रही हूँ....अब आज की पहेली

मुझे फिर उजाड़ा न जायेगा कुँवर !"

"मैं क्षमा माँगने आया हूँ नगीना !"

"क्षमा माँगने आये हो?..." क्षीण हँसी हँस पड़ी नगीना—"पुरुष भी कहीं क्षमा माँगते हैं छोटे राजा !"

"पुरुष यदि अपराध करता है तो क्षमा भी माँग लेता है?"

"तो तुम किस अपराध की क्षमा माँगने आये हो?"—पूछा नगीना ने ।

"कल मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया नगीना !..." उदय ने कहा ।

"और क्या मैंने अपराध नहीं किया था?...बड़े भोले बनते हो छोटे राजा । कल सब कुछ छीनकर, आज और क्या छीनने का इरादा करके आये हो?...बोलो न !"

उदय ने लक्ष्य किया कि नगीना के चेहरे की शुष्कता विलीन होती जा रही है और मादकता की आभा चमकने लगी है ।

आँखों में धतूरे की विषमता दूर होकर, कटाक्ष का तीर आ बसा है ।

बड़ी ही आकर्षक एवं भावमयी लग रही थी नगीना ।

नीरजा का श्यामवर्ण, नगीना के गौरांग के आगे पराजित हो उठा । नगीना का पश्चाताप विलीन होकर, अमृत वासना का रूप धारण कर बैठा और उसका अवश शरीर उदय की गोद में कस गया ।

विस्मृति के गर्त में डूबता-उतराता हुआ उदय, उस मधुर आह्वान से एकदम विह्वल बन गया ।

दरवाजे बन्द हुए ।

कमरे में अन्धकार छा गया ।

और उस अन्धकार में प्रकाश की किरण ठीक आधे घण्टे बाद प्रविष्ट हुई ।

दरवाजा फिर खुल गया ।

परन्तु आज नगीना ने उदय को तिरस्कृत करके बाहर नहीं धकेला।

वह उसकी गोद में अपना मुख छिपाये लेटी रही और उस अनुपम आनन्द की स्मृति मे विभोर होती रही।

उदय भी भूला-सा बैठा रहा।

वह क्या कर रहा है, किस ओर जा रहा है, जाकर कहाँ थकेगा और थककर कहाँ विश्राम लेगा ?—

इसे सोचना नहीं चाहता वह।

सोचता है—जो कुछ हो रहा है, होने दो—और जो कुछ होगा, उसे सहन कर लेगा वह किसी न किसी तरह।

"कुँवर !..." धीरे से पुकारा नगीना ने।

"कहो !..." उदय ने नगीना के मादक नेत्रों मे अपनी पुतलियाँ बैठा दीं।

"हमारा यह रास्ता कहाँ जाकर समाप्त होगा छोटे राजा !..."

"जहाँ तक चल सको तुम...चाहो तो यहीं समाप्त हो सकता है।"

"नहीं !"—बोली नगीना—"इतनी दूर आगे आकर अब रुक सकना असम्भव है परन्तु मुझसे तुम छल तो नहीं करोगे कुँवर !..."

"ऐसा तुम क्यों पूछती हो नगीना !....क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं ?...."

"विश्वास है, तभी तो नदी की धार में बह चली हूँ..." कहकर नगीना ने सन्तुष्टि का एक निःश्वास लिया।

नारी, पुरुष के विश्वास पर ही तो चलती है और वाचाल पुरुष कल्पित बातों द्वारा कितनी ही नारियों को विश्वास दिलाता है।

वह सोचता है जब द्रौपदी पाँच-पाँच पुरुषों की पत्नी थी तो क्या वह पाँच नारियों का भी पति नहीं बन सकता।

नारी एक साथ अपने कितने ही बेटों को एक समान प्यार कर सकती है—परन्तु पुरुष तो अपने आप को भी तिरस्कार के जूते मारता है।

और इसी तरह धीरे-धीरे पुरुष की भंगिमा कठोर और नारी की प्रकृति सरल होती जाती है।

तो पाषाण और पानी का सामंजस्य ही कैसा?

तुलना ही क्यों?

"पुजारी बाबा कब आयेंगे?...." उदय ने पूछा।

"परसों तक आयेंगे..." बोली नगीना—"इसके बीच मिलते रहना रोज...घर जाकर मन्दिर की पुजारिन को भूल मत जाना..."

"भला यह भी कभी हो हो सकता है नगीना!" उदय ने कहा—"तो चलूं...कल प्रातःकाल फिर मिलूंगा...."

"तुम्हें जाने देने का जी नहीं चाहता छोटे राजा!..."

"तो बांधकर रख लो मुझे...." हंसकर बोला उदय।

"अब जा ही कहां सकते हो तुम....नागिन ने तो तुम्हें बांध ही रखा है!" बोली नगीना।

और सचमुच नगीना उदय के शरीर से नागिन की तरह जा लिपटी।

उदय भी, खुले दर ाजे की बात भूलकर मादकता की गोद में जा गर्क हो गया।

"नगीना!..."

सहसा दरवाजे पर कोई तड़पा।

और नगीना इस तरह भयभीत होकर छटक पड़ी, जैसे नागिन पर पैर पड़ गया हो उसका।

उदय भी चेतनाशील हुआ।

दोनों अलग होकर उठ खड़े हुए।

दूध-पानी एक दूसरे से इस तरह विलग हो गये, जैसे कभी मिले ही नहीं थे!

और दूध-पानी को विलग करने वाला हंस दरवाजे पर खड़ा था, क्रोध से कांपता हुआ।

वृद्ध पुजारी को वहां उपस्थित देखकर दोनों का रक्त जम गया।

पुजारी कमरे के अन्दर आ रहे।

"तुम?... कुँवर बेटा, तुम?...इतना जहर क्या तुम शहर से अपने हृदय में भर लाये हो?"

"........."

उदय की जबान तालू से जा सटी थी।

बोल ही न सका वह कुछ।

पुजारी नगीना के सामने था खड़ा हुआ।

"कलंकिनी!..." बोला वह दाँत पीसकर—"विष खाकर भी, धतूरा पीकर भी तेरी दानवता न मिटी, तेरी वासना न जली... ब्राह्मण के मुँह पर तूने नाली का कीचड़ उछाल कर रख दिया..."

"बाबा!..."

कहकर नगीना पुजारी के पैरों पर गिर पड़ी।

और पुजारी ने प्रकम्पित पैर उठाकर उसे जोरों की एक ठोकर लगा दी।

उसको पिता की छाया में भी शरण न मिली।

हताश होकर काँपता हुआ पुजारी चारपाई पर बैठ गया।

"कुँवर!" बोला वह—"अपने उज्ज्वल कुल की प्रतिष्ठा का ध्यान तुम भूल बैठे.. यदि आज ताऊ इस बात को सुन लें तो विष खाकर अपनी जान दे दें...मगर मैंने तुम्हारे कुल का नमक खाया है और मुझे अपने कर्त्तव्य का ध्यान है....मैं इस बात पर पर्दा डालूंगा...चले जाओ तुम! फिर कभी यहाँ मत आना..."

सर लटका कर उदय चला गया।

जीवन में ऐसा लांछन उसने कभी न सहा था।

पुजारी ने उस दिन नगीना की बड़ी ही भर्त्सना की।

दूसरे दिन से नगीना को दूनी मात्रा में धतूरा दिया जाने लगा। दिन भर तक विस्मृत होकर पड़ी रहती थी वह। अपने शरीर का भी ध्यान नहीं था उसे, फिर प्रेम और वासना का ध्यान कहाँ

पुजारी ने उन दो उच्छृङ्खल प्राणियों की पाप गाथा छिपाई तो अवश्य परन्तु पेट में पलता हुआ पाप कभी छिप सका है ?

पुजारी कांप उठा, जब उसे वह ज्ञान हुआ कि नगीना को गर्भ है।

फिर भी उसे सब अपमान सहन करना मंजूर था परन्तु ठाकुर घराने पर आंच आने देना स्वीकार नहीं था।

एक दिन, जब नगीना मन्दिर में कीर्तन कर रही थी, किसी भक्त ने कहा—

"इधर माँ पार्वती की दशा कुछ विचित्र-सी दिखाई पड़ रही है..."

"क्या बात है ?..." दूसरे ने पूछा।

"देखते नहीं ?..." तीसरे ने कहा—"जिसे तुम लोग माँ कहकर पूजते हो, उसने जवानी के जोश में आकर अपना पेट भारी कर लिया है..."

"चुप रहो....माँ को ऐसी बातें न कहो...." पहले ने कहा।

"इस कुलटा को तुम अपनी माँ कहते हो..." तीसरा बिगड़कर बोला।

और उसी दिन !

उदय और नगीना बगीचे में एक क्षण के लिए मिले।

"यह मैं क्या सुन रहा हूँ नगीना !..." पूछा उदय ने।

"जो कुछ सुना है तुमने, ठीक ही सुना है"...नगीना रोकर बोली—"मुझे गर्भ है। तुमने आग लगा दी, हमसे जैसे बनेगा बुझा लेंगे..."

"क्या पुजारी बाबा यह बात जानते हैं ?..."

"हाँ !..." कहकर नगीना घूम पड़ी।

गाँव में धीरे-धीरे नगीना के पतन की कहानी फैल रही थी, परन्तु उसे नष्ट करने वाले का नाम कोई नहीं जानता था।

ताऊ ने भी सुना—गाँव के मुखियों ने उनसे न्याय करने की

प्रार्थना की और दूसरे ही दिन पंचायत की तिथि निश्चित कर दी गई।

पुजारी को खबर लगी, तो उसने नगीना को बुलाकर कहा— "देख, कल पञ्चायत होगी....तुझे भी उपस्थित होना पड़ेगा...पाप किया है तूने तो धैर्य के साथ उसका सामना भी कर...मगर एक बात याद रहे। तेरी ओछी जबान से कुँवर का नाम कभी न निकले....हमने उनका नमक खाया है। ठाकुर घराने के अन्न से ही तेरा शरीर पला है...तेरा धर्म है तू उनकी प्रतिष्ठा के लिए स्वयं अपने को भी उत्सर्ग कर दे..."

"ऐसा ही होगा बाबा!..." रोती हुई बोली नगीना।

"और पञ्चायत से आकर जहर खाने को तैयार रहना ..." पुजारी बोला—"जब आन ही नहीं रही तो जीवन का मूल्य ही क्या?...."

• •

उदय का मस्तिष्क डावाँडोल हो उठा है।

जब से उसने सुना है कि कल पञ्चायत होगी, गाँव के बड़े-बड़े मुखिया एकत्रित होंगे, ताऊ सरपंच की गद्दी पर बैठेंगे, पेट में पाप लादे नगीना खड़ी होगी, सब उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखेंगे—

तभी से उसका हृदय हाहाकार कर रहा है।

अपने कमरे में बैठा है वह।

अकेला ही—

और सोच रहा है, पश्चाताप कर रहा है।

उफ्!...उसने नियति के बहकावे में आकर यह कैसा खेल खेला, जिससे खिलती हुई एक कोमल कली असमय में ही मुरझा गई!

कुछ दिन पहले जिसे भक्तगण 'पार्वती' कहकर श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे—

वही कल कुलटा की उपाधि धारण कर निकृष्ट बन जायगी।

परिवर्तन इसे ही तो कहते हैं—

और मानव सदैव से ही परिस्थिति का, परिवर्तन का दास रहा है।

उदय का मस्तक अगाध घृणा से भर उठा।

पाप के भागी नारी और पुरुष दोनों होते हैं, परन्तु फल केवल नारी को ही भुगतना पड़ता है।

समाज का बन्धन पुरुष के लिए वरदान है और नारी के लिए अभिशाप।

पुरुष हँसता है, खेलता है—

नारी को अपनी वासना का खिलौना बनाकर खिलवाड़ करता है।

और नारी?—

नारी काठ की पुतली बनकर पुरुष के इशारे पर नाचती है। पुरुष की तृप्ति के लिए अपनी अनमोल निधि लुटा देती है...पुरुष की वासना के पीछे अपनी सद्भावना का बलिदान कर देती है—

और पुरुष का पाप अपने गर्भ में लेकर, माँ बनने की अभिलाषिनी नारी, समाज की क्रूर आँखों की ज्वाला भूल जाती है।

उसे चेत तब होता है, जब कठोर समाज की ठोकर उसके कोमल सीने पर बैठती है और वह 'हाय-हाय' कर उठती है—

और सङ्गदिल समाज के ठेकेदार कर्कश स्वर में चिल्ला उठते हैं—

"कुलटा है!...व्यभिचारिणी है...नागिन है..."

परन्तु समाज यह भूल जाता है कि नारी को कुलटा, व्यभिचारिणी एवं नागिन बनाने का श्रेय स्वयं उसके सदस्यों पर है—पुरुषों पर है।

नगीना भी समाज की दृष्टि में कुलटा बनी, व्यभिचारिणी कहलाई, नागिन की उपाधि से अलंकृत की गई।

परन्तु उसे ऐसा बनाने वाला, उसके कोमल तारों को झनझना-कर अपनी तृप्ति करने वाला, उसके मर्मस्थलों में गुदगुदी भरकर अपनी वासना का रंग भरने वाला पुरुष--उदय आज भी अछूता बच रहा है।

किसी की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी है।

लोगों ने केवल नगीना का पतन देखा है, बीच से ऊँचा उठा हुआ उसका पेट देखा है, जिसमें एक अनोखा पाप पल रहा है—

और चिल्ला-चिल्लाकर उसे पापिन कहने लगे हैं।

उदय के कानों में चारो ओर से घोर गर्जना के शब्द सुनाई पड़ रहे हैं।

नगीना की लांछना का हर दृश्य उसके नेत्रों के समक्ष साकार हो उठा है और इसीलिए वह व्यथित हो गया है।

वह पुरुष है अवश्य, उसने पाप की नदी में गोते लगाये हैं जरूर, मगर वह साधारण मनुष्य की तरह नहीं है।

पाप करके, सीना तानकर वह नहीं चल सकता।

चोरी करके, सीनाजोरी करने की उसकी आदत नहीं।

उसने जो कुछ भी किया है—जान में अथवा अनजान में, उसके लिए उसे महान ग्लानि है।

वह अकेले नगीना को ही पाप का फल भुगतने न देगा।

कल भरी पंचायत में, बीच समाज में, वह साहसपूर्वक उठ खड़ा होगा और नगीना का हाथ पकड़ कर कहेगा—"यह मेरी पत्नी है।"

लोग थूकेंगे, हँसेंगे—ताऊ बेहोश हो जायेंगे।

और ठाकुर-घराने की प्रतिष्ठा कीचड़ में लोटकर धूमिल हो जायगी।

परन्तु इन सबका ध्यान उदय को नहीं है।

उसे अपना कर्त्तव्य निभाना है।

एक गलती करके फिर दूसरी गलती नहीं करेगा वह।

वह हँस-हँसकर नगीना को पत्नी रूप में स्वीकार करेगा और समाज के दण्ड को, उपहास को, साहस के साथ सहन करेगा।

परन्तु नीरजा ?

नीरजा का क्या होगा ?

उस कोमल कली का क्या होगा, जो अपने आप टूटकर उसकी उँगलियों के बीच आ पड़ी है ?

क्या वह उसे निर्दयतापूर्वक मसल कर फेंक देगा ?

नहीं !...

वह उसका भी पोषण करेगा।

उसे भी पराग का रक्त देकर, विकसित होने देगा।

नीरजा नारी है, दया की मूर्ति है।

वह नगीना जैसी नारी को दया की भिक्षा देगी; उदय जैसे पुरुष को क्षमा प्रदान करेगी। अपने हृदय से ईर्ष्या की भावना निकालकर दूर फेंक देगी वह !

उदय ने अब तक कुछ खाया नहीं था, नाश्ता भी नहीं किया था।

ताऊ, ताई और बूढ़ा सुफल...सभी समझाकर हार गये थे परन्तु चिन्ता की चोट से आहत उदय अपने हठ पर दृढ़ रहा।

लाचार होकर ताई ने नीरजा को उसके पास भेजा।

धीरे-धीरे चलती हुई नीरजा जब आकर उदय के सामने खड़ी हो गई, तब उसने उसे देखा।

देखते ही घबराकर उठ खड़ा हुआ।

और पागल-सा दौड़कर उसे अपने शरीर से कस लिया उसने।

नीरजा का मुख सैकड़ों हजारों चुम्बनों से भर गया। यौवन का पोर-पोर कठोर बन्धन में पड़कर आर्त्तनाद कर उठा।

"नीरजा !...मेरी नीरजा।"

पागल-सा कहे जा रहा था उदय। साँस जोरों से चल रही।

थी। आवेश में हाँफ रहा था वह।

और पुतलियों की आकार बरसात के बादल की तरह हो रही थी।

"क्या हो गया है आपको आज ?"—नीरजा ने पूछा।

उदय का पागलपन देखकर वह आश्चर्य चकित हो गई थी।

उसने धीरे से उदय को चारपाई पर ला बिठाया।

"कैसी तबीयत है आपकी ?" उसने पुनः पूछा।

"आज पूछने आई हो यह ?" बोला उदय—"आज तुम्हें मेरे पास आने का अवसर मिला है..."

"क्या करूँ ?...पति के व्यवहार के अनुरूप ही तो चलना है मुझे !" —नीरजा ने कहा और व्यथित उदय के गाल पर, एक मादक निशानी लगा दी उसने अधरों द्वारा।

नीरजा की निशानी पाकर-उदय विकल हो उठा।

बोला—"उफ् ! नीरजा ! तुम आज क्यों आई ? ...अब मेरे पास क्या रहा तुम्हें देने के लिये ? तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान अब नहीं दे सकता मैं !....मैं लुट गया...बरबाद हो चुका...अपनी निधि मैंने लुटा दी...अपनी दुनिया मैंने बरबाद कर दी....मेरा शरीर थक चुका है—मेरी आस्था बह गई है...मेरे रग-रग में जहर फैल गया है....मैं विषाक्त हो गया हूँ नीरजा !...मेरे घर में, मेरे दिल में, मेरी नस-नस में आग लग गई है.. ज्वालामुखी फूट पड़ा है मेरे मस्तिष्क में।"

"धैर्य रखिये ?....मुझे बताइये, क्या हुआ है ?..." बोली नीरजा।

"सुनना ही चाहती हो तुम ?...नीरजा, मेरी नीरजा ! अगर तुमने मेरे पास आना न छोड़ा होता तो आज मैं न लुटता...अगर तुमने मुझे बाँधकर रखा होता तो मैं यों बरबाद न होता...."

"साफ-साफ बताइये आप ?"—कहकर नीरजा ने अपने कोमल हाथों द्वारा उदय का शरीर कप लिया।

और हृदय में क्षमा का सागर भरे हुए नारी ने, पुरुष की ज्वालामुखी को अपने अन्तर में समेट लिया।

"बोलिये!" नीरजा ने कहा।

"तुम्हारे प्रेम का पुजारी, तुमसे निराश होकर वासना का पुजारी बन गया...गङ्गाजल का प्यासा, शुद्ध जल न पाकर, नाली का पानी पी बैठा...तुमने नगीना का नाम सुना है नीरजा!...."

"हाँ, अभी आज ही ताई उसके विषय में बता रही थीं!"

"क्या बता रही थीं?" उसने पूछा।

"यही कि वह पुजारी की विधवा बेटी है...यौवन का आवेग सम्हाल नहीं सकी और पथ-भ्रष्ट हो गई। कल उसके विषय में पंचायत में विचार होगा!" बोली नीरजा।

"क्या ताई ने यह नहीं बताया कि उसे पथ-भ्रष्ट किसने बनाया।"

"यह वे क्या जाने?....कल स्वयं नगीना ही बतायेगी!"

"नहीं नीरजा!"—बोला उदय—"नगीना ऐसा कभी न करेगी। वह अपना अपमान सह लेगी मगर उस पुरुष का अपमान नहीं होने देगी..."

"वह पुरुष है कौन, जानते हैं आप?..."

"जानता हूं!" ...दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगा उदय—"उस पतित का पोर-पोर पहचानता हूं मैं...."

"कौन है वह!...मुझे बताइये!" नीरजा के स्वर में उत्सुकता थी और आँखों में प्रश्नवाचक चिह्न तिर रहा था।

"वह एक ऐसा निकृष्ट जीव है, जिसके पास धन है, प्रतिष्ठा है और उसके प्रेम पर जान देने वाली प्रेयसी भी, मगर..."

कहते-कहते रुक गया उदय।

उसने देखा—नीरजा का मुख रक्तहीन एवं आभाहीन होकर पीला पड़ गया है। उदय के गले में पड़ी हुई उसकी कोमल बाँहें निर्जीव होकर नीचे गिर पड़ी हैं। उसके सीने पर विश्राम करने

वाले पुरुष अकारण ही दूर हटकर काँपने, उठने-बैठने लगे हैं। मदिरा छिटकाने वाली आँखें, पत्थर जैसी हो गई हैं।

थोड़ी देर पहले जो सन्देह नीरजा के हृदय में प्रकट हुआ था, वह सजीव हो गया। सब कुछ स्पष्ट हो उठा।

"नीरजा !...." बोला उदय—"क्या तुम उसका नाम-सुनना चाहती हो ?

"नहीं !....नहीं !..." हाँफती हुई बोली नीरजा —"मेरे कानों में इतनी शक्ति नहीं कि वह नाम सुन सकूँ और सुनकर जीवित रह सकूँ...."

नीरजा सन्तप्त हो उठी थी।

अब उदय की बारी थी। उसने विह्वलता से भरकर उसके कोमल अङ्गों को अपने अंक में समेट लिया।

"क्या तुम मुझे क्षमा कर सकोगी नीरजा !" उसने पूछा।

"आप ऐसा क्यों पूछते हैं ?..." विकल वाणी में नीरजा बोली—"क्षमा के अतिरिक्त नारी के पास और है भी क्या ? मगर अपराध आपने नहीं किया है—आप से दूर रहकर मैंने ही अपराध किया है। मैं भूल गई थी कि पुरुष को नारी के सहारे की जरूरत है। मैं नहीं जानती थी कि प्रेम का भूखा आपका हृदय इस तरह से अपनी भूख मिटाने को तत्पर हो उठेगा....जानती होती तो आपको कभी आँख की ओट न होने देती, आपको अपने हृदय में बिठाकर कैद कर लेती, कहीं जाने न देती, कहीं आने न देती.... मुझे क्या मालूम था कि पुरुष, जवान होकर भी नारी के पथ-दर्शन का आकाँक्षी है ..यह भूल मुझसे हुई है और मैं ही आपसे क्षमा माँगती हूँ..."

"नीरजा ! तुम देवी हो, क्षमाशील हो—तुम्हारी तुलना करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है, तुम्हारे सामने सर उठाने योग्य भी नहीं रहा मैं, तुम से क्षमा माँग सकने का अधिकारी भी नहीं रह गया।"

"कैसी बातें करते हैं आप ?" बोली नीरजा—"क्षमा माँगना

चाहते हैं तो जाकर नगीना से क्षमा माँगिये, जो आपके कारण विनाश मार्ग पर अग्रसर हुई है।"

"मगर क्या केवल क्षमा माँगने से ही उसका उद्धार हो जायगा नीरजा!....उसके जीवन का जो कुछ रिक्त हुआ है, वह क्या इस जरा-सी सहानुभूति से भर सकता है?...."

"नहीं!..." संयत वाणी में बोली नीरजा—"इसकी पूर्ति के लिये आपको उसके संरक्षण का भार लेना ही पड़ेगा..."

"क्या तुम इसके लिए अपनी अनुमति दे सकोगी नीरजा!..."

"दूँगी!... मैं अपना अधिकार नगीना को दूँगी...मैं अपने वृक्ष के छाया तले उस विपत्तिग्रस्ता नारी को शरण दूँगी...आपकी गलती मेरी गलती है और आपका दुख, मेरा दुख...इस संकट को हम दोनों समान रूप से झेलेंगे।" नीरजा ने कहा।

"धन्य हो तुम नीरजा!..." बोला उदय।

"आप चल कर भोजन कर लीजिये...ताऊ और ताई बहुत दुखी हैं..."

"मैं अभी चलता हूँ...." उदय ने कहा—"तुम्हारे सहारे ने मुझे नया जीवन दिया है। अब मैं शक्ति-सम्पन्न बन गया हूँ.... चलो..."

नीरजा ने उदय को भोजन कराया, उसी प्रेम से, उसी हाव-भाव से, उसी अपनत्व से—जरा भी अन्तर नहीं आने पाया था नीरजा के व्यवहार में।

और उसकी दृढ़ता देखकर स्वयं उदय भी आश्चर्यचकित था।

वह भावमयी नारी कहीं से भी शिथिल नहीं हुई थी। वह ज्यों की त्यों थी।

अन्तस्थल में आग जल रही थी परन्तु मुख पर वही शीतलता का भाव था।

हृदय रो रहा था मगर आँखें हँस-हँस कर लहालोट हो रही थीं। क्या करे नीरजा?

धैर्य न रखे, प्रमत्त होने का बहाना न बनाये तो कहाँ जाय? अब यही रास्ता तो बच रहा है उसके लिए।

× × ×

मन्दिर के बगीचे में पंचायत लगी है।

व्यभिचार का मामला सुनने के लिए ग्रामीण जनता हजारों की संख्या में उमड़ पड़ी है।

बड़े-बड़े मुखिया सर पर पग्गड़ बाँधे और बदन पर बन्ददार मिर्जई डाँटे बैठे हैं।

सरपंच बूढ़े भानुप्रताप सिंह भी गद्दी पर विराजमान हैं। उदय भी थोड़ी दूर हटकर सर नीचा किये हुए आसीन है।

मन्दिर का पुजारी, अपनी दुराचारिणी बेटी नगीना को लेकर पंचों के सामने खड़ा है और न्याय की प्रतीक्षा कर रहा है।

ठाकुर को सजग हुआ देखकर भीड़ शान्त हो गई।

"पुजारी!" ठाकुर ने पुकारा।

"आज्ञा बड़े राजा!" बूढ़े ब्राह्मण ने हाथ जोड़ दिये।

"यह पंचायत क्यों हो रही है, जानते हो?..." ठाकुर ने पूछा।

"जानता हूँ बड़े राजा!..."

"नगीना के पतन की कहानी तुम्हें मालूम है?...."

"सुना है सरकार!"

"अपनी आंखों से कभी नहीं देखा तुमने?" पूछा ठाकुर ने।

"देखा था सरकार।"—बोला पुजारी—"मगर तब, जब सब कुछ नष्ट हो चुका था, चमन वीरान हो गया था...."

"जानते हुए भी तुमने हमें सूचना क्यों नहीं दी?"

"दोहाई सरपंच सरकार की!....मेरा अपराध क्षमा किया जाय बड़े राजा!"

"अपनी बेटी का न्याय कराना मंजूर है तुम्हें?"

"पंच परमेश्वर की आज्ञा हमारे सर-आंखों पर होगी सरकार!"

"ठीक है!"

कहकर ठाकुर ने नगीना की ओर देखा।

वह थर-थर कांप रही थी।

सर नीचा था।

आंखें जमीन की छाती कुरेद रही थीं।

"नगीना !..." ठाकुर ने पुकारा।

"........."

नगीना की कांपती जबान तालू से जा सटी। शब्द नहीं निकल सके।

"नगीना !"

नगीना चुप।

"जवाब दो....मुँह खोलो नगीना ! पाप करते समय डर नहीं लगा तो इस समय भी शरीर का कम्पन रोको...." तीव्र स्वर में बोले ठाकुर।

"क्या पूछते हैं आप ?...." नगीना ने धीरे से कहा।

"ऐसा पाप तुमने क्यों किया ?" ठाकुर ने पूछा।

इस प्रश्न से मर्माहत होकर नगीना ने अपने को सँभाला। उसके शरीर का कांपना रुक गया।

बोली वह—"इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकती..."

"तुम्हें उत्तर देना पड़ेगा नगीना !..."

"मैं उत्तर देने से इनकार करती हूँ..." दृढ़ स्वर में नगीना ने कहा—"समाज को इस प्रश्न का उत्तर पाने का कोई अधिकार नहीं....मैंने पाप किया है और दण्ड भोगने को प्रस्तुत हूँ....मेरा पतन होना था, हुआ...समाज को दण्ड देना है, वह दे सकता है...."

"तुम्हारे पतन का कारण कौन है ?..." पूछा ठाकुर ने।

"यह मेरी अपनी बात है, मैं नहीं बता सकती इसे..." नगीना दृढ़ स्वर में बोली।

"तुम्हारे न बताने से न्याय ठीक से न हो सकेगा..."

"मगर बता देने से बहुत बड़ी हानि की सम्भावना है...मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर कभी नहीं दे सकती...."

सारा समूह नीरव सब कुछ सुन रहा था।

उदय के हृदय में अजीब उथल-पुथल मची हुई थी।

ठाकुर और अन्य पञ्च आपस में काना-फूसी कर रहे थे—शायद न्याय की व्यवस्था स्थिर कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद उठ खड़े हुए ठाकुर।

न्याय के शब्द सुनने के लिए सभी अस्थिर हो उठे।

पुजारी की आँखें एक बार बन्द हुईं फिर खुलीं और फिर बन्द हो गईं।

नगीना की साँस तीव्र गति से चलने लगी।

उदय का मस्तिष्क प्रबल झंझावात से भर उठा।

"नगीना !..." अत्यन्त गम्भीर एवं कठोर स्वर में कहने लगे ठाकुर—"तुमने जो अपराध किया है वह सर्वथा अक्षम्य है, इस गाँव के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ था। अगर हम तुम्हें दण्ड नहीं देते तो हमारी मर्यादा नष्ट होती है, और नारियों के पवित्रता की शृंखला नष्ट हो जाती है...अतः हम सब पंचों ने मिलकर यह न्यायदण्ड प्रस्तुत किया है कि तुम्हारे सर के बाल मुड़ाकर, मुख पर कालिख और चूना लगाकर आस-पास के गाँवों में घुमाया जाय।"

समूह में सन्नाटा छा गया।

वृद्ध पुजारी 'शंकर-शंकर' करने लगा।

नगीना स्थिर खड़ी रही। उसने अपने सर के बाल खोल दिये—दण्ड भुगतने को प्रस्तुत हो गई थी वह।

परन्तु उसी समय उदय उठ खड़ा हुआ। सारी पंचायत उसकी ओर देखने लगी!

"खबरदार!" बोला उदय—"नगीना का अपमान करने का कोई व्यक्ति प्रयत्न न करे..."

और वह नगीना की बगल में जा खड़ा हुआ तथा अपने हा थ से उसका सर ढँक दिया।

सब आश्चर्यचकित नेत्रों से उदय की ओर देख रहे थे।

क्या हो रहा है और क्या होने वाला है?....यह कोई समझ नहीं रहा था।

"कुँवर, यह क्या है?..." तीव्र स्वर में ठाकुर ने पूछा।

"नगीना मेरी है बड़े राजा!...." उदय ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया।

"तुम्हारा मतलब?"

"नगीना मेरे ही कारण पथ-भ्रष्ट हुई..." उदय ने कहा।

बिजली चमकी, बादल गड़गड़ाये और जैसे बूढ़े ताऊ के शिथिल शरीर पर वज्र गिर पड़ा।

उनका शरीर काँपा, वे खड़े थे सो बैठ गये; गिर-से पड़े।

बड़ी देर तक सन्नाटा रहा।

समूह ठाकुर का न्याय सुनने के लिए बेचैन हो पड़ा।

दस मिनट बाद ठाकुर उठें। उनका मुख पीला पड़ गया था। झुर्रियाँ और स्पष्ट हो आई थीं।

"भाइयों!..." कहने लगे वे—"इस समय हमारे सामने नगीना और उदय दोनों अपराधी हैं। हमें अपनी परम्परा के अनुसार दोनों को दण्ड देना है....यह उदय अपने माँ-बाप के मर जाने के बाद, मेरे खून ने पला है ....और इसे ही मैं आज मारने पर तत्पर हूँ। मैं अपने बदन का यह सड़ा हुआ माँस काटकर फेंक दूँगा....मैं आज्ञा देता हूँ कि उदय और नगीना इसी समय हमारे गाँव से निकल जायँ और फिर कभी यहाँ अपनी अपवित्र छाया न पड़ने दें।"

हाँफते हुए ठाकुर बैठ गये।

उदय ने नगीना का हाथ पकड़ा और हवेली की ओर बढ़ चला।

"कहाँ जा रहे हो उदय?"—ठाकुर ने कड़क कर पूछा।

"नीरजा को लेने!"—उदय बोला।

"तुम उसे अपने साथ नहीं ले जा सकते?"—ठाकुर गरजे—"तुम उसकी छाया भी नहीं देख सकते...वह फूल की पंखड़ी, तुम जैसे काँटे के लिए नहीं है..."

उदय लौट पड़ा और नगीना को लेकर स्टेशन की ओर बढ़ चला।

जन्मभूमि को छोड़ते हुए उसे अपार दुख हो रहा था।

नीरजा को त्याग कर वह व्यथित भी कम न था।

सन्तोष था उसे तो केवल इसका कि उसने अपने को निर्बल प्रमाणित नहीं किया और एक कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

समूह, जाते हुए उदय को देखता रहा।

सभी स्थिर रहे। कोई बोल नहीं सका कुछ। बूढ़े ठाकुर के सामने कौन बोलता?

पुजारी ने जिस घटना को दूर करना चाहा था, अन्त में वह होकर ही रही।

वृद्ध ताऊ का मुख आँसुओं से तर था।

•

नदी की सपाट छाती पर एक सजा हुआ बजड़ा तैर रहा था।

मांझियों के काले-काले शरीर डाँड़ की गति के साथ झूम रहे थे।

बड़ी चहल-पहल थी उस छोटे-से खुशनुमा बजड़े पर।

तबला ठनक रहा था, मजीरे झनझना रहे थे, सारङ्गी रें-रें कर रही थी और घुँघुरू बोल रहे थे—छम्! छम्!

जवानी से गदराई हुई देह लिए, सौन्दर्य का अम्बार लादे एक हसीना गा रही थी।

जैसे नदी की लोल लहरों के स्वर में अपना स्वर मिलाकर कोई कोयल कूक रही हो—

जैसे गाने की लय के साथ वीणा के तार झंकृत हो रहे हों।

उस शमा का नाम था हसीना।

हुस्न का तो अम्बार था उसके पास।

बदन पर जवानी थी, मुँह पर गुलाब की लालिमा, होंठों में शहद, सीने में दिल था और था छाती पर यौवन का उभार!

रग-रग में मदिरा की अलमस्ती थी, कमर में लहरों की चुलबुलाहट थी, अंग अंग में उन्मादकारी नृत्य की गति थी और हास्य में थी प्रबल आकर्षण की चिनगारी।

ऐसी थी शमा, जिस पर जल मरने के लिए कितने ही परवाने आ गये थे चारों ओर।

शहर के नामी रईस, सेठ घनश्यामदास का बेटा था शरद-कुमार।

इस समय वह अपने मित्रों के साथ बजड़े पर सैर कर रहा था और हसीना के हुस्न की तारीफ में चाँदी के टुकड़े लुटा रहा था। रईस का बेटा न था?

कमी ही किस बात की थी?

नदी अपनी थी, बजड़ा अपना था और धन की दासी हसीना भी उसकी 'अपनी' ही थी।

शराब की बोतलें थीं और प्याले भी।

दिल में प्यास भी थी, वासना भी। सो मदिरा का दौर चल रहा था।

पीते-पीते कोई थकता ही नहीं था।

मदमत्त थे सभी, फिर भी पीते ही चले जा रहे थे।

नाचते-नाचते हसीना थक गई और शरद की बगल में आ बैठी।

उसके नृत्य पर ताल देती हुई लहरें भी निश्चल हो पड़ीं।

हसीना ने प्याला अपने हाथ में लिया और अजीब अन्दाज से शरद से बोली—

"लो पियो मेरी जान!..."

"पिलाओ मेरी तितली !..." शरद ने कहा।

प्याला खाली हो गया।

शरद का एक दोस्त मस्ती में झूमता हुआ बोला—

साकी पिलाये जा, मुझे साकी पिलाये जा।
कहता है दिल की होश रहे तक चढ़ाये जा ॥

"वाह वा !....क्या खूब !..." हसीना ने अपने नाजुक होठों से दाद दी।

"हसीना ! अब कोई गजल सुनाओ तुम...तुम्हारा कूकना बन्द हो जाने से नदी का दिल उदास हो गया है..." शरद ने कहा।

"जो हुक्म मेरे दिल !...." कह कर हसीना ने अलाप लिया और गाने लगी—

शमा बनकर आये थे, मुझको जला कर चल दिये।
दिल की राहत छीन ली, आँखें चुरा कर चल दिये ॥
जिस घड़ी से उनकी नजरों ने हमें घायल किया—
हम तड़पते रह गये, वो दिल दुखाकर चल दिये।
हम भी उनके हिज्र में हैं कम उठाये गम नहीं—
मेरा दर्दे दिल सुना और सर झुका कर चल दिये।
शमा तो जल कर बुझ गई, परवाना अब भी जल रहा—
वो देखकर तड़पन मेरी मुस्करा कर चल दिये।

अभी गाने का कम्पन हवा पर तैर ही रहा था, नाव की पतवार से कोई वस्तु आ टकराई और पतवार घूम जाने के कारण नाव जोरों से डगमगा उठी।

नाचती हुई हसीना, संभल न सकने के कारण शरद की गोद में आ रही।

भयभीत हो उठी थी हसीना सो शरद ने उसे अपने शरीर से आबद्ध करके अभयदान दिया।

तब तक माझियों ने पतवार ठीक करके नाव संभाल ली।

"क्या था ?"—शरद ने माझियों से पूछा।

"एक लाश है सरकार !.. वह, बही जा रही है ! ..." एक माझी ने कहा !

"लाश !" भयभीत स्वर में हसीना बोली, जैसे वह लाश उसी दम भूत बनकर उससे आ लिपटी हो।

शरद ने देखा—वह किसी सभ्य युवक का शव था, आधार-हीन बहा जा रहा था।

"कोई अभागा नदी में डूब मरा है !" बोला शरद।

"नहीं !" शरद के एक मित्र ने कहा—"मालूम होता है कि किसी ने इसे मारकर नदी में बहा दिया है..."

तभी वह शव बहता हुआ पुनः नाव के समीप आ रहा।

"सरकार ?...." एक माझी बोला—"अभी इसमें जान है... कहिये तो इसे पकड़ा जाय..."

"रहने दो जी !"...शरद का कोई मित्र बोल उठा—"मरा है अथवा जीता...अपने से क्या मतलब ?..."

"नहीं-नहीं ! अगर जीवित होने की शंका है, तो उसे निकाल लेना ही ठीक है...." शरद ने कहा।

और उसी समय, उसकी आज्ञा मान छप्प से एक माझी पानी में कूद पड़ा।

लाश को पकड़ कर बोला वह—"अभी मरा नहीं है सरकार ! मगर मरने में अब देर भी नहीं है..."

"उसे ऊपर लाओ..." शरद ने आज्ञा दी।

माझियों ने पकड़ कर लाश ऊपर खींची और सभी उसे देखने के लिए उसके ऊपर झुक पड़े।

"क्या ही सुन्दर चेहरा है इसका ?"—हसीना बोली।

"बहुत बड़े घर का मालूम होता है !"...शरद ने कहा—

"इसके कपड़े की तलाशी लो ...देखो, कोई चीज है इसके पास, जिससे इसका परिचय मालूम हो सके...."

मांझी तलाशी लेने लगे।

एक मनीबेग निकला।

खोलने पर चार सौ पचीस रुपये मिले परन्तु उसका कोई परिचय ज्ञात नहीं हो सका। नोट भींग गये थे।

"मेरा ख्याल है"—शरद का एक दूसरा मित्र बोला—"कि यह युवक कल की रेल दुर्घटना का शिकार हुआ है..."

"कैसी दुर्घटना सरकार!...." मांझी ने पूछा।

"कल विन्ध्याचल में...." उसने कहा—"किसी पुल पर से एक रेलगाड़ी, सवारियों से भरी, रात में चली जा रही थी। न जाने किस तरह उसका एक डिब्बा नदी में आ गिरा...."

"हाँ इस दुर्घटना की बात तो हमने भी सुनी थी...हो सकता है, यह युवक भी उस डिब्बे में रहा हो...." बोला शरद।

शरद ने उसकी नाड़ी देखी—बहुत धीरे-धीरे चल रही थी।

"नाव किनारे लगाओ!..." बोला वह।

आज मरणासन्न युवक को वह यों ही मरने नहीं देना चाहता था। देखते-देखते नाव किनारे से आ लगी। वहाँ शरद की कार उपस्थित थी। वह बेहोश युवक उसी में लिटा दिया गया।

"हसीना! तुम जाओ अब..." शरद ने कहा—"और तुम राधे श्याम! किसी डाक्टर को लेकर जल्द से जल्द मेरी कोठी पर आओ...."

स्वयं शरद ही कार चलाता हुआ बढ़ चला अपनी कोठी की ओर।

प्रशस्त सड़क के किनारे विशाल कोठी खड़ी थी।

कार के रुकते ही नौकर दौड़ पड़े।

"इस बेहोश आदमी को मेरे कमरे में ले चलो!..." शरद ने नौकरों को आज्ञा दी।

शीघ्र ही वह चेतनाहीन युवक शरद के कमरे में पहुंचा दिया

गया।

समाचार पाकर शरद की पत्नी रजनी आई।

गोरा-सा शरीर, बीस बसन्तों का पराग लेकर खिल उठा था—और शरद था कि रजनीगंधा की सुगन्ध छोड़कर बाजारू कूड़ा समेटता था।

"क्या हुआ इन्हें ?" पूछा रजनी ने।

"नदी में बहा जा रहा था यह....मैने सोचा इसकी जान यों ही निकल जायगी, सो यहाँ उठा लाया ..." बोला शरद।

"कहीं आपकी मोटर के नीचे तो नहीं दबा यह ?...." रजनी अविश्वास भरे स्वर में बोली, क्योंकि वह जानती थी कि शरद शराब पीकर, आँधी की तरह कार चलाता है।

वह यह भी जानती थी कि उसका पति, उसके नयनों की, उसके सौन्दर्य की, मदिरा छोड़कर बोतलों की एवं वेश्याओं के उन्मादकारी विष की मदिरा पीता है...रोज पीता है।

"हर बात में तुम्हें मुझ पर सन्देह क्यों होता है रजनी..." तीखे स्वर में कहा शरद ने।

"मैं सन्देह नहीं करती..." बोली रजनी—"आप व्यर्थ में ऐसी बातें सोचते हैं..."

"अच्छा चलो यहाँ से...अभी डाक्टर आते ही होंगे..." शुष्क स्वर में शरद ने कहा।

और रजनी चुपचाप चली गई वहाँ से।

डाक्टर आये।

बेहोश को ध्यानपूर्वक देखा उन्होंने। शरद ने सारी घटना उन्हें बता दी।

"मालूम होता है, इसे तैरना नहीं आता था...तभी यह पानी बहुत ज्यादा पी गया है...थोड़ी देर तक और पानी में रह जाता तो मृत्यु निश्चित थी..."

झुककर डाक्टर ने उस युवक को पेट के बल लिटा दिया और

उसकी कमर पर जोर देकर पेट का पानी निकाला।

तत्पश्चात् उसे पुनः पीठ के बल कर दिया और उसके शरीर की जाँच करने लगा।

"इसके सर में भीतरी चोट आई है शरद बाबू !..." डाक्टर ने कोई दवा उसके मुख मे छोड़ी। दोनों हाथों में दो इन्जेक्शन भी दिये और अपनी फीस लेकर चलते बने।

शरद के पिता सेठ घनश्यामदास कहीं गये हुए थे।

लौटे तो उन्होंने भी उस बेहोश युवक के विषय में सुना। वे उसी समय उस कमरे में आये।

"यह कौन है बेटा !..." उन्होंने शरद से पूछा।

"पता नहीं कौन है बाबूजी !....नदी से निकाल कर लाया हूँ इसे..." शरद बोला।

"नदी से निकाला है, तब तो जरूर किसी सूँस का बेटा होगा...." कहकर हँस पड़े सेठ घनश्यामदास–'अब तो हालत इसकी ठीक नजर आ रही है ?"

"हाँ, अब यह होश में आना ही चाहता है...अभी-अभी डाक्टर गये हैं...." शरद ने कहा !

"इसे बचा लाये, यह बहुत अच्छा किया बेटा तुमने..." बोले सेठजी–"नहीं तो नदी इसे अपने पेट में भर लेती...."

उसी समय उस बेहोश युवक के मुख से धीमी कराह की आवाज निकली और असीम कष्ट के साथ उसने धीरे से अपने नेत्र खोल दिये।

बड़ी देर तक वह निर्निमेष दृष्टि से कमरे की विचित्र छत को देखता रहा फिर उसकी नजर शरद पर पड़ी और फिर सेठजी पर।

और तब जैसे कुछ न समझकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

"कैसी तबीयत है तुम्हारी ?..." शरद ने मीठे स्वर में पूछा।

"अच्छा हूँ अब।..." युवक ने पुनः नेत्र खोलकर कहा–"मैं

कहाँ हूँ ?..."

"तुम हमारी कोठी पर हो...." सेठजी ने कहा।

तब युवक ने पुनः सेठजी की ओर देखा।

बोला—"आप कौन हैं !...."

"मैं हूँ सेठ घनश्यामदास..." बोले सेठजी—"और यह है मेरा बेटा शरद !"

"ओह !...." बड़े कष्ट से कहा उस युवक ने—"यहाँ का सब कुछ मेरे लिये नया है...यहाँ के सभी लोग अपरिचित हैं...और मेरा मस्तिष्क ..मेरा दिमाग ठीक से काम नहीं कर रहा है ..."

युवक धीरे से उठकर बैठ गया !

एकाएक पूछ बैठा वह—"और मैं कौन हूँ ?"

इस प्रश्न को सुनकर सभी चौंक पड़े। सेठजी शरद का मुँह देखने लगे और शरद ने आँखें फाड़कर उस अर्द्धपागल युवक की ओर देखा, जो दूसरों से स्वयं अपना परिचय पूछ रहा था।

"मुझे बताइये...." दीन वाणी में वह युवक बोला—"मुझे कृपा कर बताइये कि मैं कौन हूँ ...कहाँ रहता हूँ...यहाँ क्यों आया ? ....कैसे आया ?...."

फिर भी कोई बोला नहीं। सभी विस्मय से भर कर खड़े थे।

उसके अनोखे प्रश्न का उत्तर देने में सभी असमर्थ थे।

एकाएक वह युवक अगम वेदना से भर कर चीख उठा—"मुझे बताइये नहीं तो पागल हो जाऊँगा मैं...मैं सब कुछ भूल गया हूँ...कुछ याद नहीं....कुछ भी याद नहीं...मुझे बताइये .. बताइये !"—

चीखता-चिल्लाता वह युवक बेहोश होकर चारपाई पर गिर पड़ा।

"अजीब पागल से पाला पड़ा है !" शरद हताश वाणी में बोला।

डाक्टर को बुलाने के लिये एक नौकर दौड़ गया।

डाक्टर आया और उसने सभी बातें ध्यानपूर्वक सुनीं तथा स्टेथिसकोप से बेहोश युवक की परीक्षा की।

फिर गम्भीर स्वर में बोला--"मालूम होता है, इन्हें एम्नीशिया (Amnesia) हो गया है..."

"यह कौन-सी बीमारी है डाक्टर साहब !" सेठजी ने पूछा।

"यह बड़ी ही कष्टदायक बीमारी है सेठजी !" बोला डाक्टर-"इसका रोगी अपना सब कुछ भूल जाता है। उसकी स्मृति पूर्णतया नष्ट हो जाती है। उसे कुछ भी याद नहीं रहता कि वह कौन था, कहाँ रहता था..."

"यह बीमारी होती कैसे है डाक्टर ?" शरद ने पूछा।

"मस्तिष्क में प्रबल आघात लग जाने के कारण..." बोला डाक्टर--"अथवा कभी-कभी मानसिक उद्वेग के भी कारण यह बीमारी हो जाती है।"

"इसका कोई उपाय ?..."

"मैं ऐसी बीमारी का ईलाज करने में असमर्थ हूँ शरद बाबू ! मैं इन्हें होश में अवश्य ला दूँगा पर इनकी स्मृति वापस लाने की विद्या मेरे पास नहीं...."

कहकर डाक्टर ने पुनः कोई इन्जेक्शन दिया और नाड़ी पकड़ कर बैठ गया।

बोला--"ये होश में आते ही अपने विषय में पूछेंगे। कोई कल्पित कहानी इन्हें बतानी पड़ेगी, तभी इनकी मानसिक अशांति दूर होगी। इन्हें स्वस्थ करने के लिए यह आवश्यक है कि ये अपनी पिछली बातें सोचने का प्रयत्न न करें ..."

उसी समय युवक पुनः होश में आया।

आँखें खोलकर उसने डाक्टर की ओर देखा। पूछा--"आप कौन हैं ?

"मैं डाक्टर हूँ !" डाक्टर ने कहा।

"क्यों आये हैं आप ?" युवक ने पुनः पूछा।

"आप अस्वस्थ हैं..दवा देने आया हूँ।..." बोला डाक्टर।

"ओह ! मैं बीमार हूँ...." शिथिल स्वर में बोला युवक—"तभी.. तभी इतना कष्ट है मुझे डाक्टर !...मेरा दिमाग, मेरा मस्तिष्क एकदम खराब हो गया है..."

"आप व्यर्थ सन्देह न करें !..." डाक्टर ने कहा–"आपका दिमाग एकदम ठीक है ?..."

"मैं कौन हूँ डाक्टर !..." एकाएक युवक पूछ बैठा–"मेरा नाम क्या है ?....'

"तुम्हारा नाम अमर है !..." डाक्टर के पहले ही सेठजी बोले–"और तुम मेरे बेटे हो..."

"ओह ! अब याद आया कि मेरा नाम अमर है..." सन्तोष की साँस लेकर बोला युवक–"कितनी बड़ी उलझन में पड़ गया था मैं तो...तो क्या मैं सचमुच आपका बेटा हूँ ?"

"हाँ..." बोले सेठजी–"अब तुम चुप रहो, नहीं तो तुम्हारी तबीयत फिर खराब हो जायगी ..."

"मुझे हुआ क्या था ?..."युवक ने पूछा।

"तुम्हें ज्वर आ गया था बेटे ! और ताप के कारण तुम बेहोश हो गये थे।" सेठ जी ने कहा।

"ठीक है...मुझे याद आता जा रहा है मगर...मगर मैं फिर भूला जा रहा हूँ। यह स्थान मेरे लिये एक दम नया जैसा लगता है...आप मेरे पिता है मगर पहचान नहीं सकता आपको मैं...."

"ज्वर से तुम्हारा मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर रहा है..." सेठजी ने कहा—"अब चुप रहो तुम...."

"हाँ अब मैं चुप ही रहूँगा।" कह कर वह चुप हो गया।

पीने के लिये दवा देकर डाक्टर चलने लगा।

सेठजी और शरद को बुलाकर अकेले में वह बोला–"देखिये ! अब ये ठीक हो जायेंगे मगर इन्हें एक क्षण के लिए भी यह पता न लगे कि ये आपके बेटे नहीं है, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। जब

इनके घर-द्वार के विषय में पूरा पता चल जाय, तभी यह भेद बताया जाय ..."

"मैं इस बात पर ध्यान रखूँगा डाक्टर साहब !" बोले सेठजी।

धीरे-धीरे वह युवक अमर स्वस्थ होने लगा।

और पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर भी उसका विकृत मस्तिष्क ठीक नहीं हो सका। वह पूरा भुलक्कड़ बन गया। थोड़ी देर पहले बीती हुई घटना को वह तुरन्त भूल जाता। खाने-पीने की सुध ही नहीं रहती उसे। रास्ता चलते-चलते घर का रास्ता ही भूल जाता। बाहर निकलना होता तो कमरे का दरवाजा ही भूल जाता कि किस ओर है।

कभी शरद को पिताजी कह देता और कभी सेठजी को शरद भाई कहकर पुकारता।

मगर शरद की पत्नी रजनी को वह भाभी कहने से कभी नहीं भूला।

सभी उस विक्षिप्त युवक के प्रति सहानुभूति से भरे थे।

नौकर-चाकर भी उसे सेठजी का बेटा ही समझने लगे थे।

एक दिन, सेठजी, शरद और अमर तीनों साथ साथ चाय पीने बैठे।

नौकर चाय की ट्रे रख गया।

"अमर बेटा !..." सेठजी ने पुकारा।

"हाँ पिताजी !" अमर ने चौंक कर कहा।

"आज तुम्हीं चाय तैयार करके दो बेटा !..." बोले सेठजी।

अमर चाय तैयार करने लगा। तीन प्यालियों में उसने चाय भरी !

और दूध तथा चीनी. चाय में छोड़ने के बजाय, भूल से आमलेट की प्लेट में छोड़ दिया।

जब चाय पीने का समय आया तो अमर की गलती देखकर

सेठ जी और शरद हँसने लगे।

"तुम रोज चाय पीते हो मगर चाय बनाने नहीं आया तुम्हें।" शरद ने कहा।

"क्या करूँ शरद भाई! देखता तो रोज हूँ परन्तु उसी समय तक याद रख सकता हूँ...." अमर ने कहा।

"जाओ, बहू से कह दो, चाय बना दे..." सेठजी ने कहा।

अमर उठकर रजनी के सामने आया।

"क्या है अमर ?...." रजनी ने पूछा।

"दूसरी चाय बना दो भाभी !..." अमर ने कहा।

"क्यों ?...."

"शरद भाई ने वह चाय बिगाड़ दी...."

"यह क्यों नहीं कहते कि हमने बिगाड़ दी...." रजनी हँसकर बोली— 'अच्छा, जाओ तुम, मैं अभी दूसरी चाय भेजती हूँ ..."

"जरा जल्दी भेजना !..." कहकर अमर जाने लगा।

"अरे, उधर कहाँ जाते हो ?" रजनी ने पूछा।

"ड्राइङ्गरूम में जा रहा हूँ...वहीं पिताजी और शरद भाई बैठे हैं।" अमर ने कहा।

"उधर गुसलखाना है जनाब! ड्राइङ्ग रूम उस तरफ है .. जरा आँख खोलकर कदम बढ़ाया कीजिये..."

"आँखें तो खुली रखता हूँ भाभी ! मगर दिखाई नहीं पड़ता।"

"दिखाई पड़ेगा तब...जब बहू घर में आ जायगी!" रजनी ने कहा।

"बहू तो तुम्हीं हो भाभी !" सरलता से कह दिया अमर ने।

"चलो हटो !....बड़े शैतान हो तुम !...." रजनी ने स्नेह छलकते स्वर में कहा।

रजनी को उस भोले-भाले भुलक्कड़-असहाय युवक से अगाध स्नेह था।

वह सदैव उसके आराम का ख्याल रखती थी।

उसे अपने हाथों से परस कर खाना खिलाती थी और अमर उस नारी का प्रेम पाकर अपने विगत जीवन की सभी बातें भूल गया था।

•

नीरजा के नेत्रों में आंसू नहीं हैं।

उसके हृदय में जो आग जल रही है, उसके ताप से उसकी आंखों के आंसू, उसके अन्दर की करुणा और उसके भावों का कम्पन सभी कुछ भस्म होता चला जा रहा है और वह चुपचाप अपनी उजड़ी हुई दुनिया को देखकर ठण्ढी सांस भर लेती है।

रोती नहीं वह, मगर जब वेदना से भरकर मुस्कराती है तो उसकी भंगिमा अपने आप खुल पड़ती है, रो पड़ती है।

जब से उदय गया है, तब से एक बार भी उसने ठीक से खाया-पीया नहीं है। सोती है तो स्वप्न ठोकरें मारता है और जागती रहती है तो वेदना उसके हृदय का कोना-कोना मरोड़ कर रख देती है।

और इसी मन्थन में पड़कर नीरजा, सूखे पेड़ की टहनी जैसी रह गई है। हाड़ पर का मांस और मांस में का खून, सभी सूख गये हैं। लगता है, जैसे—पहाड़ भर का दुख पाकर भी जो नारी रो नहीं रही है, वह जल रही है, भीतर-भीतर तड़प रही है।

उसकी वेदना मूक है।

और उस मौन में कितना वैकल्य भरा है कि नीरजा का कलेजा ही उसे सम्हाल पा रहा है....दूसरा कोई नहीं सम्हाल सकता उसे।

वृद्ध ताऊ भी कम सन्तप्त नहीं हैं, उन्हें गहरा आघात लगा है।

उदय उनका एकमात्र सहारा था सो उसे खोकर वे मर्माहत हो उठे हैं।

उदय की चरित्र-भ्रष्टता से उनके हृदय के टुकड़े टुकड़े हो गये हैं।

और असहाय नीरजा का मूक क्रन्दन सुनकर उनका कलेजा बाहर छिटक पड़ता है।

आजकल ताऊ में पहले जैसी गम्भीरता नहीं रह गई है।

वे अब अत्यन्त सदय हो उठे हैं। जरा-सी उदय की चर्चा होते ही रो देते हैं। नीरजा के सामने बहुत कम पड़ना चाहते हैं। और कभी-कभी नीरजा से जब उनका सामना हो जाता है तो वे अगम वात्सल्य से भरकर उसे अपने कलेजे से लगा लेते हैं।

और कलेजे से लगाये-लगाये घण्टों रोते हैं।

वे जानते है कि नीरजा ने सब कुछ खोकर उदय को पाया था—और अब उदय को खोकर उसकी लालसा मर गई होगी, करुणा का सागर लहरा उठा होगा।

सो ऐसे समय अपनत्व का तनिक-सा स्पर्श उसके लिए सञ्जीवनी सिद्ध होगा।

रोते हुए वृद्ध ताऊ के कलेजे से लगकर भी, नीरजा रोती नहीं।

वह अपना कर्त्तव्य समझती है।

जानती है कि ताऊ के ठठरी के भीतर जो विशाल हृदय है, उसने उस जैसी असहाय बालिका को शरण दी है तो वह उस हृदय को अपने कारण रोने नहीं देगी।

वह मुस्करायेगी, ताकि उस मुस्कान को देखकर ताऊ का जी बहले।

अतः वह मुस्कराकर कहती—"ताऊ! मेरे अच्छे ताऊ!... क्या रोना ही दुनिया में सब कुछ है? क्या करुणा पीकर, इन्सान हँसी नहीं उगल सकता?....क्या वेदना के भार से दबकर मनुष्य मुस्करा नहीं सकता..."

"नहीं बेटी, नहीं! ऐसा नहीं होता...नहीं हो सकता..." ताऊ कहते।

"मुझे देखो ताऊ !" नीरजा मुँह ऊपर उठाकर कहती—"मैं तो हँस सकती हूँ .. हँसती भी हूँ..."

और दूसरे ही क्षण वह बनावटी ढङ्ग से हँसने लगती।

तो ताऊ कहते—"रहने दे बेटी !...अधिक मत हँस...यह हँसना तो रोने से भी अधिक करुणाजनक है..."

बूढ़े ताऊ की यह बात अनुभव सिद्ध थी।

क्योंकि दूसरे ही क्षण जब नीरजा हँसना बन्द करती तो उसके मुख पर रुदन की स्पष्ट छाप आ पड़ती।

और ताऊ, उसकी बहने-बहने जैसी हो गई आँखों को अपनी हथेली से पोंछकर चले जाते।

ताऊ की दशा देखकर उनकी जमीन्दारी के सभी लोग अत्यन्त चिन्तित थे।

यद्यपि अपराध उदय का ही था, जिसे उसने स्वयं स्वीकार भी किया था परन्तु पञ्चायत में उपस्थित कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता था कि उदय को कुछ भी दण्ड मिले।

नगीना को ही दण्ड मिले।

परन्तु बूढ़े ठाकुर का न्याय, अन्याय नहीं कर सकता था।

वे पौत्र के मोह में पड़कर अपनी सफेद मूँछें नीची नहीं करना चाहते थे।

ठाकुर-घराने का सर, जो अब तक गर्व से ऊँचा था, उनकी जरा-सी त्रुटि से जमीन तक झुक जाता—

तो वह क्यों ऐसा काम करते !

भरी जवानी में जब वे नहीं झुके तो वृद्धावस्था में कैसे झुकते?

गदराये फलों का भार लादे हुए भी जब पेड़ नत नहीं हुआ तो सूखकर क्या नत होगा, क्या झुकेगा ?

लोग कहते—"ताऊ ! आपने अच्छा नहीं किया..."

इस पर बूढ़े ठाकुर गम्भीर स्वर में कहते—"अपनी पगड़ी तुम्हारे पैरों पर रख देता, तब अच्छा करता...है न मुखिया ? ..."

"जो हुआ सो हुआ सरकार !..." कोई चौधरी कहता--"मगर अब से भी भला है...आदमी भेजकर कुंवर साहब की खोज कराओ..."

इस पर ताऊ कहते—"मुंह से निकली हुई बात और कमान से छूटा हुआ तीर, ये दोनों वापस नहीं लौटते चौधरी ! मैं अपनी तरफ से कर गुजरा, तुम्हें भी जो कुछ हौसला हो कर डालो।"

"हम लोग पारी-पारी से, समय निकाल कर कुंवर साहब की खोज करेंगे सरकार !" कई चौधरी एक साथ बोले--"मगर उन्हें लाने पर आप हवेली में ठहरने देंगे या नहीं...."

"हवेली तुम्हारी है चौधरियों !..." बूढ़े ताऊ ने कहा--"इसकी एक-एक इंट तुम्हारे पैसे और परिश्रम से बनी है...तुम चाहो तो मुझे निकाल कर इसमें चाहे जिसे बसा सकते हो..."

और उसी दिन कई आदमी उदय की खोज में आस-पास के शहरों को चल पड़े।

बूढ़ा सुफल उस सबका अग्रणी था।

× × ×

नागिन !—

आज यह नाम शहर के हर रईस, हर रँगीले, हर छबीले की जबान पर है।

जैसे आग के अङ्गारे की तरह लपटें फेंक कर चमक उठा है यह शब्द !

रूप बाजार में आज इस नाम ने धूम मचा दी है।

बूढ़ी शरीफन का जो कोठा कल तक, रात हो जाने पर भी अँधेरे में डूबा रहता था, आज बिजली के प्रकाश से जगमगा उठा है।

बड़े-बड़े सेठों की थैलियाँ खुल पड़ी हैं शरीफन के सामने—उसकी नौचा नागिन की नथ-उतराई के लिये।

हजार ! दो हजार ! चार हजार !

और तब भी शरीफन, हड्डी उभरे हुए हाथ से नोटों की वह गड्डी टाल देती है और कहती है—

"आप भी क्या मजाक करते हैं सेठजी !...अभी तो वह बिल्कुल बच्ची है। चार छै महीने पहिले ही तो आई है मेरे पास... अभी पूरी तरह तवायफ भी तो नहीं बन सकी...."

और जवानी का प्रथम बन्द तोड़ने को लालायित बेचारे सेठ, मन मसोस कर रह जाते।

यह कोई नहीं जानता था कि शरीफन के अंधेरे कोठे को रोशन करने के लिए यह शमा एकाएक कहाँ से आ गई ?...परवानों को डँसने के लिये यह नागिन किधर से रेंग उठी ?

कोई जानना भी नहीं चाहता था यह भेद।

उन्हें तो केवल सौन्दर्य से मतलब था !

वे केवल उन्मादकारी यौवन, हलाहल भरी आँख, अँगूर जैसे अधर, सेव जैसे गाल, पृथ्वी की आकृति जैसे गोल वक्षस्थल और लहरों जैसी बलखाती, इठलाती हुई कमर—यही चाहते थे।

और ऐसी ही थी वह नागिन !

१५-१६ साल की उम्र थी....बदन के रग-रग में लालित्य भरा था, जैसे माँस का सीना तोड़कर अभी-अभी सौन्दर्य का खून बह चलेगा।

आँखों में जैसे भावों का सागर था।

हास्य, रुदन, कटाक्ष एव अन्य हाव-भाव उसकी काली-काली पुतलियों से छिटके पड़ते थे।

पतली-पतली नाजुक कमर की एक-एक लहर में सैकड़ों बल थे और एक-एक बल में हजारों अदायें थीं।

जो भी उसे देखता...वह 'हाय' कर उठता और तड़पकर दर्द से अपना कलेजा दबा लेता।

शरद भी रूप-बाजार का पक्का खरीददार था।

नागिन बाई की ख्याति सुनकर वह भी कई बार उसके कोठे

पर आया था और उसके मादक यौवन, हलाहल भरे सौन्दर्य और गायन-नर्तन पर मुग्ध होकर डँसा जा चुका था।

नागिन का विष उसके रग-रग में मिल गया था।

सो अपना वह विष उतारने के लिए शरद ने शरीफन के सामने पाँच हजार का प्रस्ताव रक्खा।

मगर बूढ़ी शरीफन इस बार भी अविचलित रही।

वह जानती थी कि नागिन का विष उतारने के लिए पाँच हजार तो क्या, पाँच लाख तक मिल सकते हैं।

लाचार शरद हताश हो रहा।

मगर उसने नागिन के यहाँ आना-जाना नहीं छोड़ा।

पहले तो अमर भी शरद के साथ वेश्याओं के यहाँ आता-जाता था परन्तु एक दिन अपनी रजनी भाभी के मना करने पर उसने कोठों पर न जाने की कसम खा ली और उस दिन से शरद के साथ फिर कहीं नहीं गया।

नागिन के कोठे पर अमर एक बार भी नहीं आया था!

उस साल शरद का जन्म दिवस आया तो सेठ घनश्यामदास ने वृहत् उत्सव का आयोजन किया।

सभी बड़े-बड़े रईस आमन्त्रित किये गये।

शरद ने अपने कुछ अन्तरंग मित्रों के लिए एक विशेष आयोजन किया। वह आयोजन सेठजी से छिपा न था परन्तु वे शरद के मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे।

वह आयोजन था नागिन का नृत्य और मदिरा का ताण्डव!

जन्मोत्सव के दिन खूब चहल-पहल रही।

दिन भर तक सभी अत्यन्त व्यस्त रहे।

शाम के आठ बजते-बजते जब सभी आमन्त्रित व्यक्ति चले गये तो शरद का विशेष आयोजन प्रारम्भ हुआ।

कोठी के बगीचे में एक दालान बनी हुई थी, वहीं सब मित्र-गण एकत्र हुए।

नागिन अपने समाजियों के साथ पहले ही आ चुकी थी।

पहले तो लालपरी का नृत्य हुआ। उन्माद छा गया सभी पर....नागिन से भी पीने का अनुरोध हुआ परन्तु उसके नम्र स्वर में इनकार कर दिया।

बोली--"मुझे माफ करें, मैं पीती नहीं...."

"अरे भाई!" तभी शरद का एक मित्र झूमता हुआ बोला-"तुम्हारे अमर साहब ऐन वक्त पर कहाँ चले गये!"

"अरे यार! अजब भुलक्कड़ आदमी है...." शरद बोला-"दो घण्टे पहले उसे इन्सपेक्टर साहब के घर भेजा था, उन्हें बुला लाने के लिए...सो न तो वही आये और न तो खुद ही लौटा..."

"कहीं भटक रहा होगा बेचारा!..." दूसरे मित्र ने कहा!

"अच्छा भाई! अब तो बाईजी का कुछ होना चाहिये..." कोई मित्र बोला--"बड़ी तारीफ सुनी है इनके डँसने की, आज इनका जहर भी देख लूं...."

"जरूर! जरूर!..." नागिन अदा से मुस्कराकर बोली-"दिल सम्भाल के रखियेगा....मैं दिल पर ही डंक मारती हूँ..."

कहकर वह उठ खड़ी हुई और कमर पर तनिक सा बल देकर उसने एक घातक अंगड़ाई ली, जिससे युवकों की जवानी के बन्द-बन्द टूट चले।

नागिन को सजग देखकर सारङ्गी काँप उठी—तबला एक बार 'थप-थप-टक' कहकर चुप हो गया।

और नागिन के पैरों में पड़े हुए घुंघरू बज उठे छमाछम तथा उसकी कमर हजार-हजार बल खाकर लोगों के दिलों के लाख-लाख टुकड़े करने लगी-उसकी आँखों और हाथों के इशारों पर बिजलियाँ चमकने लगीं तो सारंगी भी गुनगुनाने लगी।

तबला भी अलाप उठा।

और नागिन के कोकिल कण्ठ ने कूका—

जो हम पै गुजरती है, सितारों से पूछिये।
इन छोटे-छोटे रात के प्यारों से पूछिये॥
बेचैन इस तरह से मैं रहती हूँ रात दिन—
बादल में बिजलियों के इशारों से पूछिये।
जो ढूंढते हैं चांद को अँधेरी रात में—
उन बदनसीब दर्द के मारों से पूछिये।

नागिन गा रही थी और उसकी सुरीली आवाज से बिंध कर सभी मन्त्रमुग्ध-से बैठे थे। सभी चुप थे। मदिरा की उच्छृङ्खलता भी शान्त थी।

उसी समय नागिन की दृष्टि दरवाजे से आते हुए किसी युवक पर पड़ी और बिजली का झटका-सा लगा उसके शरीर में।

पैर अपने आप रुक गये...बजते हुए घुँघरू छम्-छम् करके चुप हो रहे।

तान का आधार नष्ट हो जाने के कारण सारंगी भी नीरव हो उठी और ताल का स्थान न मिल सकने के कारण तबला बोलते-बोलते स्थिर हो रहा।

आकस्मिक व्याघात से सभी चौंक पड़े।

नागिन एकटक खुली खिड़की जैसे नेत्रों द्वारा आते हुए उस युवक को देख रही थी।

सभी के नेत्र उधर को उठ गये।

देखा—अमर चला आ रहा था, आत्मविस्मृत सा।

"आओ अमर !...." शरद बोला—"कहाँ चले गये थे तुम ?..."

"क्या बताऊँ शरद भाई ! बड़ी आफत में फँस गया था... तुम तो व्यर्थ ही मुझे इधर-उधर भेजा करते हो..." अमर ने कहा और आकर शरद के पास बैठ गया।

"क्या हुआ ?..." शरद ने पूछा।

"तुमने मुझे किसी काम से बाहर भेजा था न ?...." कहने

कहा अमर—"कोठी से बाहर निकलते ही मैं आगे बढ़ता गया... बहुत दूर जाने पर मुझे याद पड़ा कि तुमने मुझे किसी काम से भेजा है मगर वह काम क्या था, यह बिल्कुल याद नहीं रहा मुझे ...फिर सोचा कि घर लौटकर तुमसे फिर पूछ लूँ और लौट पड़ा, मगर..."

"मगर क्या ?..."

"तुम सुनकर हँसोगे शरद भाई ! कि मैं कोठी का रास्ता ही भूल गया और घण्टों इधर-उधर भटकता रहा...यह तो कहो कि रामू मिल गया मुझे बीच रास्ते में और अपने साथ यहाँ तक लाया..."

अमर की बात सुनकर सभी हँसने लगे ।

एक ने कहा—"अरे शरद ! तुम्हारा यह भाई तो बहुत भुलक्कड़ है...."

"कुछ पूछो मत यार !..." शरद बोला—"अपना खाना-पीना तक भूल जाता है यह..."

नागिन एकटक अमर के चेहरे की ओर देख रही थी और ध्यानपूर्वक उन बातों को भी सुन रही थी ।

उसके मदभरे नेत्रों में न जाने कैसा वैकल्य लहरा रहा था।

अमर ने भी नागिन को देखा था और एक बार उपेक्षा से देखकर आँखें फेर ली थी ।

"मैं थक गई हूँ....थोड़ा आराम करना चाहती हूँ..." नागिन ने कहा और उठकर बगल के कमरे में चली गई ।

इस समय उसका सारा शरीर काँप रहा था, जैसे आँधी के वेग से पेड़ काँपता है ।

जब वह अस्त व्यस्त-सी आकर कुर्सी पर बैठी तो शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देखकर चौंक पड़ी ।

खिला हुआ गुलाब का फूल जैसे मुरझा गया था ।

उसने एक नौकर से शरद को बुला भेजा ।

शरद आया तो उसकी दशा देखकर घबरा उठा।

"कैसी तबीयत है तुम्हारी बाई जी !...." पूछा उसने।

"एकाएक सर में चक्कर आ गया है शरद बाबू ! उम्मीद है कि आप मेरी इस गुस्ताखी को माफ करेंगे..." बोली नागिन।

"इनमें माफी की क्या बात है नागिन !...मैं अभी शर्बत मँगाता हूँ..."शरद ने कहा और नौकर को शर्बत लाने की आज्ञा दी।

केवड़ा द्वारा सुवासित शर्बत आया। पीकर नागिन कुछ स्वच्छ हुई।

बोली—"अब मैं ठीक हूँ शरद बाबू !....अरे, आप खड़े क्यों हैं ? मैं भी कितनी गुस्ताख हूँ कि आप खड़े हैं और मैं बैठी रह गई !"

कहकर नागिन उठने लगी तो शरद ने उसका कन्धा पकड़ कर पुनः कुर्सी पर बिठा दिया।

कहा उसने-"कोई बात नहीं, मैं दूसरी कुर्सी पर बैठ जाता हूँ।"

शरद बैठ गया तो नागिन ने पूछा—"ये अमर बाबू आपके कौन हैं ?"

"मेरा भाई है !..." बोला शरद।

"बड़े या छोटे....?" पूछा नागिन ने।

शरद इस प्रश्न से असमंजस में पड़ गया।

अन्त में कहना पड़ा उसे—"छोटा भाई है मेरा...."

मगर नागिन ने शरद की वह हिचकिचाहट देख ली थी। बोली—"आप मुझसे कोई भेद छिपा रहे हैं शरद बाबू !..."

"भेद ?..." चौंककर बोला शरद—"कौन-सा भेद नागिन !"

"अमर बाबू आपके भाई हैं, इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता !..." कहा नागिन ने।

"विश्वास न करो, वह तुम्हारी मर्जी...मगर यह तुम पूछ क्यों रही हो ?"

"यों ही..." नागिन बोली—"कोई खास वजह नहीं है।

नये आदमी को देखकर कौतूहल होता ही है ..."

"मगर तुम्हारा यह कौतूहल सीमा का व्यतिक्रमण कर गया है !...." शरद ने कहा।

"नहीं-नहीं, शरद बाबू ! आप कुछ दूसरा ख्याल न करें.... मगर एक बात की प्रार्थना करूँगी मैं आपसे...."

"कहो !...."

"आप अपने साथ अमर बाबू को भी मेरे यहाँ लाया करें...." नागिन ने कहा।

"लाने की कोशिश करूँगा ..मगर वह आयेगा नहीं..."

"क्यों ?..."

"इधर उसके हृदय में वेश्याओं के प्रति घृणा हो आई है...." शरद बोला।

"खैर; मैं देख लूँगी उनकी घृणा को....अब मेरी तबीयत ठीक हो गई है ..महफिल में चल रही हूँ..."

"चलो..."

नागिन और शरद महफिल में आये।

अमर अब भी वहीं अपने स्थान पर बैठा था।

इस बार नागिन को उसने ध्यानपूर्वक देखा और बड़ी देर तक देखता रहा।

शायद उसके अनुपम सौन्दर्य से वह भी प्रभावित हो उठा था।

नागिन की कमर ने पुनः लहर ली, पैर गतिमान हुए, घुंघरू बजे और स्वर निकला—

अलाप के साथ-साथ सारङ्गी और तबला भी बोलने लगे।

नागिन गाने लगी—

अगर प्यारी सूरत तुम्हारी न होती !
मुलाकात तुमसे हमारी न होती।
जरा ख्वाब में हम तुम्हें देख लेते—
तो फ़िर इस कदर बेकरारी न होती ।।

इसके बाद नाचने लगी वह ।

घुंघरू अविराम गति से बज चले। कमर रह-रहकर लहराने लगी। नागिन ने अपने सारे अङ्ग तोड़-मरोड़कर यह दिखा दिया कि जैसे उसके शरीर में एक भी हड्डी नहीं है—

जैसे वह वास्तव में नागिन ही है।

दर्शक आवाक् से रह गये उसकी नर्त्तन कला देखकर, जिसमें मादकता भी थी और आकर्षण भी।

अमर भी मन्त्र-मुग्ध-सा हो गया।

काफी देर तक नाचती रही नागिन—

और उतनी देर तक अमर की आँखें एक बार के लिए भी नहीं झपकीं, थोड़ी देर के लिये भी बन्द नहीं हुईं।

आज नागिन नाच रही थी, सब कुछ भूलकर नाच रही थी। नाचती ही चली जा रही थी—

जैसे थकेगी ही नहीं वह !

परन्तु अन्त में थक ही गई। नाचते-नाचते पैर पत्थर जैसे हो गये और वह शिथिल होकर गलीचे पर लेट-सी गई।

"मुझे माफ कीजिये ...अब मैं ज्यादा खिदमत नहीं कर सकूँगी !..." नागिन ने अस्त-व्यस्त स्वर में कहा।

"कोई बात नहीं, अब मैं जलसा समाप्त करता हूँ !..." शरद बोला।

इसके बाद मित्र मण्डली ने आखिरी जाम भरकर पीया और चल पड़े सब।

नागिन, शरद और अमर कमरे में आये।

"रात ज्यादा हो गई है, अब मुझे इजाजत दीजिये..." बोली नागिन।

"बहुत अच्छा !..." शरद ने कहा—"अमर, तुम शोफर से कह दो बाईजी को घर तक पहुँचा दे..."

अमर चुपचाप जाने लगा तो शरद ने कहा—"बाईजी को भी

साथ लिये जाओ..."

अमर रुक गया और जब नागिन शरद से आदाब-अर्ज करके उसके पास तक आ गई तो वह आगे-आगे चल पड़ा।

अमर ने शोफर से कहकर शीघ्र ही कार तैयार करा दी।

नागिन कार पर बैठ गई तो अमर लौटने लगा।

"अमर बाबू !..." नागिन ने पुकारा।

अमर लौट आया। कार के पास आकर बोला—"कहिये !"

"आपको तकलीफ न हो तो आप भी बांदी के गरीबखाने तक चले चलें !..." नागिन ने प्रार्थना की।

"मुझे कोई तकलीफ न होगी, अब रात में कोई काम भी नहीं है...चल सकता हूँ मैं !..." कहकर अमर नागिन की बगल में आ बैठा।

कार चल पड़ी। नागिन का हृदय धड़क रहा था !

आज से पहले वह सैकड़ों पुरुषों के सम्पर्क में आई थी परन्तु किसी की निकटता ने उसके शरीर में चंचलता नहीं भरी थी।

किसी को देखकर उसके हृदय में प्यार नहीं उमड़ा था--

परन्तु अमर ने, सहज-सरल उस युवक ने, उसे वेश्या की छोरी को भी विचलित कर दिया था।

वह नागिन जो दूसरों को डँसने के लिये अपना फन उठाकर खड़ी हो सकती थी, इस समय अमर के लिये फूलों का हार बन गई थी।

"अमर बाबू !..." नागिन ने मौन भङ्ग किया।

"कहिये !...क्या कहना चाहती हैं आप ?..." बोला अमर।

"आप शरद बाबू के कौन हैं ?...." नागिन ने कहा।

"भाई !..."

"कब से ?"

नागिन के इस प्रश्न से चौंक पड़ा अमर।

बोला--"आपका मतलब ?..."

"मेरा मतलब यह है कि आप शरद बाबू के भाई कब से हुए ?"

"अजीब सवाल है..." धीरे से हँस पड़ा अमर—"जब से पैदा हुआ तभी से उनका भाई हूँ...और कब से ?...."

"मैं समझ गई..." बोली नागिन—"क्या आप मुझे पहचानते हैं ?"

"आपका चेहरा कुछ-कुछ पहचाना-सा जरूर लगता है मगर याद नहीं पड़ता कि आपको कहाँ देखा है ?"

"आप मेरे यहाँ तो कभी आये नहीं...."

"नहीं, कभी नहीं !...." अमर ने कहा।

"तो फिर याद कीजिये कि कहाँ देखा था मुझे !..." नागिन बोली।

"मैं ऐसा नहीं कर सकता....स्मृति पर जोर देने से मैं बीमार पड़ जाता हूँ...आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मुझे अपने बचपन की बातें जरा भी याद नहीं है....यहाँ तक कि मैं पारसाल की घटनायें भी नहीं बता सकता आपको..."

"ऐसा क्यों ?..." नागिन को उत्सुकता भी हुई और आश्चर्य भी !

"अभी हाल ही में मैं बीमार पड़ा था..." बोला अमर—"पिता जी कहते हैं कि तभी से मेरा मस्तिष्क खराब हो गया है..."

"ओह, अमर बाबू !...." नागिन ने वैकल्य से भरकर अमर का हाथ पकड़ लिया।

और उसी समय कार झटके के साथ रुक गई।

अमर का हाथ पकड़े हुए नागिन, झटका खाकर उसकी गोद में लुढ़क पड़ी।

सौन्दर्य प्रतिमा के उस सम्पर्क से अमर के ज्ञान-तन्तु झनझना उठे। शरीर का तार-तार बज गया, मस्तिष्क एक अगम वेदना

से पीड़ित हो उठा।

नागिन कार से उतर पड़ी। हाथ पकड़कर उसने अमर को भी उतारा। बोली—"आइये, अमर बाबू !..."

"मुझे आज्ञा दीजिये..." अमर ने कहा।

"यह नहीं हो सकता अमर बाबू ! आपको ऊपर चलना ही पड़ेगा..." कहकर नागिन घसीट ले चली उसे।

ऊपर आकर अमर ने देखा—नागिन का कमरा खूब सजा है। सौ वाट् का बल्व लगा है—पंखा भी है और कामोत्तेजक नग्न चित्र भी हैं।

नागिन का वह अपना कमरा था।

अमर चारों ओर देखता हुआ पलंग पर बैठ गया।

नागिन भी उसके पास सटकर बैठी।

"आपने तो अपना कमरा नरक-सा बना रखा है !..." अमर ने कहा।

"क्या कहूँ अमर बाबू ! पुरुषों की रुचि का ख्याल हमें करना ही पड़ता है....अपनी पसन्द यहाँ नहीं चलती..."

"ठीक कहती हो तुम...आप ठीक कहती हैं...." अमर की जबान एक क्षण के लिये लड़खड़ा गई थी।

"न-नहीं, पहले वाला ही ठीक है अमर बाबू !..." नागिन अमर के कन्धे से लगकर बोली—"जल्दी में निकला हुआ वह "तुम" इस "आप" से कहीं ज्यादा मीठा है..."

"तो ठीक हैं...मैं तुम ही कहूँगा..."

"आप यहाँ आया करेंगे न अमर बाबू !" नागिन ने पूछा।

"क्यों नहीं, शरद भाई के साथ रोज आया करूँगा..." अमर ने कहा।

"कहीं भूल न जायँ ?"

"यही तो मुश्किल है...यहाँ से जाते ही हो सकता है कि मैं तुम्हारी सूरत तक भूल जाऊँ....अपने इस दिमाग को काट कर

फेंक देना चाहता हूं..." अमर बोला।

"आपका ईलाज जारी है या नहीं ?" नागिन ने पूछा।

"थोड़े ही दिन हुए ईलाज करना छोड़ दिया है..." बोला अमर—"अब पिताजी और शरद भाई को मेरे इस पागलपन में ही आनन्द आने लगा है तो वे क्यों व्यर्थ रुपये नष्ट करेंगे ?..."

"आपकी शादी हुई है ?"

"हाँ हो गई है !..." अमर ने कहा।

"ओह !" एक ठण्ढ़ी साँस ली नागिन ने—"किससे हुई है आपकी शादी ?"

"भाभी से...." सरलता से कह दिया अमर ने।

सुनकर आकर्षक हँसी हँस पड़ी नागिन।

बोली—"यह शादी तो बड़ी हैरत अंगेज रही..."

"शादी ही तो है यह !..." बोला अमर—"रजनी भाभी मेरी जितनी सेवा करती हैं, उतनी सेवा मेरी पत्नी भी न कर सकती !"

"जाने दीजिये, इन बातों को....कुछ जलपान लाऊँ ?...." नागिन ने पूछा।

"अब घर चलकर खाना खाऊंगा .."

"हमारे ही यहाँ खा लीजिये..." नागिन ने मुस्कुराकर कहा।

"क्यों तकलीफ़ करोगी ?"

"क्या आपको हमारे यहाँ खाने में कोई परहेज है ?"

"परहेज तो मैं करता ही नहीं..कर ही नहीं सकता...परहेज तो वह आदमी करता है, जिसकी स्मृति ठीक हो....मैं अभी एक गलती करता हूँ तो दूसरे ही क्षण उसे भूल जाता हूं...फिर उस गलती का महत्व ही क्या रह गया ? "

"तो आप थोड़ी देर बैठिये, मैं अभी खाना लाई..."कहकर नागिन तेजी के साथ चली गई।

आज बूढ़ी शरीफन बीमार थी। प्रातःकाल से ही कै-दस्त हो रहा था उसे।

अतः नागिन आज पूर्ण स्वतन्त्र थी। कोई रोक-थाम न थी उसके लिये।

वह थाल में खाना सजाकर ले आई और अमर के सामने रख दिया।

"खाइये!" उसने कहा।

"आओ, तुम भी इसी में खाओ!..." अमर के इस आवाहन ने नागिन को गद्गद् कर दिया। वह हर्ष-विह्वल-सी हो उठी। दोनों ने साथ-साथ खाना खाया।

जब अमर जाने के लिए उठा तो नागिन अस्त-व्यस्त-सी होकर, अमर से सट गई।

इस तरह की उसके यौवन का उन्माद, अमर के सीने से जा टकराया।

बोली वह—"भूल मत जाना अमर बाबू?..."

"तुम्हें भूलना असम्भव है नागिन!" कहकर अमर नीचे आया और कार पर जा बैठा।

कार चल पड़ी। घर आकर उसने देखा कि उसकी रजनी भाभी अब तक बिना खाये, प्रतीक्षा कर रही है।

रजनी ने पूछा—"कहाँ थे तुम अमर, इतनी देर तक?"

"नागिन के यहाँ चला गया था भाभी!..." अमर ने उत्तर दिया!

"नागिन कौन जी?..."

"वही! जो आज नाचने आई थी यहाँ!"

"कौन!....वह वेश्या?..." रजनी ने पूछा।

"हाँ, भाभी! वह बड़ी नेक है...." अमर ने कहा।

"चुप रहो अमर!...." रजनी बोली—"वेश्या की प्रशंसा एक गृहस्थ नारी कभी सुन नहीं सकती..."

"मैं झूठी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ भाभी!...." अमर ने कहा।

"तब क्या सच कह रहे हो ?...." तुनक कर कहा रजनी ने।

"हाँ, बिल्कुल सच कह रहा हूँ..."

"मैंने मना किया था न..."

"किसलिए ?..."

"वेश्याओं के यहाँ जाने के लिए...." रजनी बोली—"कहा था न कि अब कभी मत जाना।"

"ओह, मैं तो भूल गया था भाभी !...तुम्हारी बात याद ही नहीं रही मुझे...."

"अब तो नहीं भूलोगे ?"

"नहीं, शायद नहीं !"

"ठीक है...." रजनी ने कहा —"चलो खाना खा लो..."

"मगर..." कहते-कहते रुक गया अमर।

"अगर-मगर क्या कर रहे हो ?....तुम्हारी बाट देखती-देखती मैं भी अब तक भूखी ही रह गई और तुम्हारा अगर-मगर चलता ही जा रहा है..." रजनी कृत्रिम क्रोध दिखाती हुई बोली।

"मैं खाना नहीं खाऊँगा भाभी !..." बड़े यत्न से अमर ने कहा।

"क्यों ?..." आश्चर्य की भंगिमा मुख पर लाकर बोली रजनी।

"खाना खा चुका हूँ..."

"खा चुके हो ?...."

"हाँ !...."

"कहाँ ?...."

"नागिन के घर !"

"उफ् !..." कहकर रजनी ने अपना मस्तक पकड़ लिया। वह अचेत-सी होने लगी।

"भाभी !...." अमर रुँधे कण्ठ से बोला—"मुझे क्षमा करो भाभी !—"

"निष्ठुर पुरुष !..." बोली रजनी—"तुम लोगों को वेश्याओं

के घर क्या लज्जत मिलती है, जो उनसे चिपके रहना चाहते हो ? क्या घर पर वह लज्जत तुम लोगों को नहीं मिल सकती ?...क्या वेश्याओं के निर्लज्ज भाव-प्रदर्शन पर ही फिदा होते हैं पुरुष ? ऐसा हो तो गृहणियाँ भी लज्जा त्यागकर, बीच सड़क पर नाचने को प्रस्तुत हैं...मगर शर्त यह कि उनके पुरुष उन्हें चाहें, उनसे प्रेम करें, उन्हें अपनी समझें और दुराचार का पथ छोड़ दें...."

"भाभी....भाभी...." अमर कुछ कह नहीं सका।

"घर में आग लगाकर फिर पानी लेकर दौड़ना शोभा नहीं देता अमर !...." रजनी ने कहा—"जाओ, सोओ तुम...हम नारियों के लिए तो रात भर तक तड़पना है ही, दिनभर कर्त्तव्य की चक्की में पिसना है ही..."

और अमर मुँह लटकाये चला गया।

• •

"कहिये, अमर बाबू नहीं आये क्या ?..." शरद को आया देख नागिन ने मुस्कराते हुए पूछा।

"नहीं ! .." छोटा-सा उत्तर दिया शरद ने।

"क्यों ?"

नागिन के इस प्रश्न से शरद के हृदय में ईर्ष्या की आग जल उठी।

यह नागिन !

पैसे की दासी यह वेश्या, शरद जैसे धनवान पिता की सन्तान को छोड़कर, अमर जैसे निर्धन की ओर आकर्षित हो गई है !

अमर के पास क्या है ?

अगर शरद उसे अपने यहाँ आश्रय न देता, उसे अपना भाई न बनाता तो आज वह न जाने कहाँ होता, न जाने क्या करता ?

पागल बनकर भीख माँगता और क्या कर सकता था वह ?

मगर नागिन क्या समझे यह सब ?

वह तो अमर और शरद, दोनों को एक बाप का बेटा, एक

स्वत्व का अधिकारी, भाई-भाई समझती है।

वह क्या जाने कि अमर, शरद का भाई नहीं है।

"आपने कोई जवाब नहीं दिया?..." नागिन ने पूछा—"क्या सोच रहे हैं?"

"कुछ तो नहीं..." चौंककर बोला शरद—"मैंने अमर से यहाँ आने के लिए कहा तो उसने इनकार कर दिया।"

"क्या कहा उन्होंने?..."

"कहा कि मैं उस वेश्या के पास नहीं जाऊँगा..." शरद बोला।

और यह सुनकर नागिन के मुंह से एक ठण्डी साँस निकल पड़ी, जिसे शरद ने अच्छी तरह लक्ष्य किया।

यह लक्ष्य करके अमर के प्रति उसकी घृणा और भी द्विगुणित हो उठी।

वह नागिन को अपनी बनाना चाहता था। रूप बाजार का वह पक्का खरीददार, अपने धन के आगे सौन्दर्य को तुच्छ समझता था।

और यह सच था कि उसके धन के आगे अब तक सौन्दर्य हमेशा सर झुकाता आया था—

परन्तु यहीं आकर उसके धन की महत्ता जैसे कम हो गई थी और नागिन का सौन्दर्य-विजेता बन बैठा था।

चाहे जो हो, शरद अपनी हार से घुटने टेकने वाला नहीं था।

वह प्रयत्न करने का आदी था—चाहे सफलता मिले अथवा असफलता।

उस दिन जब शरद चलने लगा तो नागिन ने कहा—"देखिये, कल अमर बाबू को जरूर लाइयेगा...."

और उसकी बात का कुछ उत्तर न देकर, जला-भुना शरद धप्प-धप्प करके नीचे उतर गया।

आज पहली बार अमर के प्रति उसे विद्वेष हुआ था।

जैसे अमर उसका भाई बनकर उसकी सम्पत्ति हड़पने को

तत्पर हो।

इसके बाद रोज ही शरद नागिन के यहाँ जाता रहा।

जब नागिन अमर के विषय में पूछती तो कोई बहाना बना देता। अमर की बुराई भी करता, ताकि अमर के प्रति नागिन का आकर्षण विलीन हो जाय।

मगर नागिन का हृदय न बदला, न बदला।

वह अमर की प्रतीक्षा करती रही। जानती थी वह कि विस्मृति के गर्त्त में डूबता-उतराता वह युवक शायद उसकी याद भूल गया है।

तभी तो नहीं आता वह।

और सचमुच अमर उसे भूल ही गया था।

इन दो-तीन महीनों के अन्दर एक बार भी उसे नागिन की याद नहीं आई। उसकी दुनिया रजनी भाभी तक ही सीमित रह गई।

और अपने पति द्वारा उपेक्षित उसकी भाभी रजनी, उस जैसे सरल युवक का स्नेह पाकर, दिन प्रतिदिन उसकी ओर आकर्षित होती गई।

परन्तु अमर अपनी भाभी के उस आकर्षण से सर्वथा अनभिज्ञ रहा। वह पागल क्या जाने यह सब?

और इसी तरह दिन सरकते जा रहे थे।

नागिन की संरक्षिका, बूढ़ी शरीफन उस ए6 दिन के हैजे की बीमारी में ही चल बसी थी और अब नागिन ही उसकी सम्पत्ति की स्वामिनी थी।

अब वह केवल कुछ खास-खास ग्राहकों के लिए नाचती-गाती थी।

उसकी नाक में हीरे-जड़े सोने की नथ अब भी लटक रही थी, जो उसके कौमार्य की गारण्टी थी।

परन्तु कोई नहीं जानता था कि इस रूपमयी वेश्या की 'नथ'

तो कब की उतर चुकी है।

जब यह नागिन, आज से कुछ ही महीने पहले बूढ़ी शरीफन के पंजे में पड़ी थी तो उसे सात महीने का गर्भ था।

शरीफन ने उसे अपने पास ला रखा और चाहा कि कोई दवा देकर उसका गर्भ गिरा दे परन्तु वह गर्भपात कराने के लिए राजी नहीं हुई।

मगर कुछ ही दिन बीतते-बीतते अपने आप गर्भपात हो गया। शायद इसमें भी बूढ़ी शरीफन का कोई हाथ रहा हो।

उसके बाद से नागिन को वेश्या-वृत्ति की शिक्षा दी जाने लगी और जब वह इस विद्या में पारङ्गत होकर पहली बार कोठे पर बैठी तो अपनी नाक में पड़ी हुई बड़ी-सी नथ देखकर उसे स्वयं अपने ही ऊपर हंसी आई।

अन्धे समाज को ठगने के लिए क्या-क्या नहीं करती वेश्यायें?

सो नागिन का कौमार्य समाज के लिए अब भी अछूता ही था।

बेचारी शरीफन, उस नथ के बदले, बीस-पचीस की गठरी पाने का स्वप्न देखती-देखती ही चल बसी।

रह गई केवल नागिन——स्वतन्त्र! स्वच्छन्न!

सो उसे अब वह नथ उतरवाने का शौक नहीं रहा।

लोग उसे कोसते, कहते, प्रार्थना करते——

और वह चुपचाप एक हृदय-वेधी मुस्कान छोड़ देती और वह एक क्षण की मुस्कान, पुरुष की वासना का उपहास करके विलीन हो जाती।

उस दिन——

नागिन का हृदय अत्यन्त व्यग्र था।

अमर के विषय में सोचते-सोचते वह पागल-सी हुई जा रही थी।

दोपहर की गर्मी से गला सूख चला था।

वह उठी। सुराही से एक गिलास पानी ढालकर शृंङ्गारदान

की मेज पर रख दिया उसने। इसके बाद एक बड़ी-सी डिबिया निकाली, जिसमें कई बड़ी-बड़ी पुड़िया थीं।

पारी-पारी ने एक-एक पुड़िया खोलकर, वह उसमें का चूर्ण गिलास के पानी में मिलाने लगी। सभी पुड़ियों का चूर्ण उसने गिलास में डाला।

तत्पश्चात् उसे घोलकर पी गई।

पीते ही उसकी आँखें शराबी की तरह हो गईं।

उसने गिलास मेज पर रख दी।

वक्षस्थल का बन्धन कुछ कष्टदायक-सा लगा सो उसने सर और वक्ष पर से साड़ी खिसका दी।

यौवन के सरोवर में खिले हुए दो कमल, चोली से कसे जैसे क्रन्दन कर उठे। नागिन ने बन्धन खोलकरचोली अलग रख दी।

तभी उसके नेत्र पीछे की ओरघूमे तो वह आश्चर्यचकित-सी रह गई, स्तम्भित-सी हो उठी।

ठीक उसके पीछे अमर खड़ा था।

"आप?..." उखड़े स्वर में नागिन ने कहा और झट से अपना वक्ष ढँक लिया।

"बड़ी उलझन में पड़ गया हूँ नागिन!..." हैरान स्वर में बोला अमर।

"क्यों, क्या बात है?...आइये, बैठिये न!..." नागिन ने कहा।

अमर पलंग पर बैठ गया।

नागिन भी उससे सटकर आ बैठी।

आज वह स्वतन्त्र थी और उसका यौवन भी बन्धनहीन हो चुका था—अतः वह, जाने कैसी एक सिरहन-सी महसूस कर रही थी।

"कैसी उलझन में पड़े हैं आप?..." नागिन ने अमर का हाथ पकड़ते हुए पूछा।

"देखो न, आज भी कोठी का रास्ता भूल गया !..." अमर हँसकर बोला—"पूरे शहर का चक्कर लगा चुका मगर न जाने किस गली में है वह कोठी ?...."

"तो यहाँ आ पड़े ?..." नागिन ने पूछा।

"कोठी खोजता हुआ इधर से जा रहा था तो तुम्हारा मकान देखकर एकाएक मैं पहचान गया और ऊपर चला आया...सोचा, तुम मुझे मेरी कोठी पर पहुँचवा दोगी.. यहाँ आया तो देखा, तुम कोई दवा पी रही हो और इसके बाद . "

"मगर आप खाँसकर क्यों नहीं आये ?..." कटाक्ष का तीर चला कर बोली नागिन।

"मैं क्या जानूँ कि तुम्हारे यहाँ आने के पहले खाँसना भी पड़ता है...."

"सिर्फ मेरे यहाँ ही नहीं, किसी भी अपरिचित जगह में जाने के पहले खाँस देना उचित है...."

"क्यों ?..."

"इसलिए कि कोई बहू-बेटी इधर-उधर बैठी हो तो ठीक से बैठ जाय !...." नागिन ने कहा।

"मगर तुम तो बहू-बेटी नहीं हो नागिन ! तुम्हारे यहाँ यह व्यवहार कैसा ?...." अमर बोला।

सुनकर नागिन का चेहरा पीला पड़ गया। अमर ने कितनी मर्मान्तिक बात कह दी थी ?

परन्तु थोड़ी ही देर में नागिन ने अपनी भङ्गिमा ठीक कर ली। सोचा, यह भोला-भाला अमर क्या जाने कि कौन-सी बात कहने से किसका दिल दुखेगा।

"तुम इधर कभी आये नहीं अमर बाबू !..." नागिन ने पूछा।

"मुझे भी आश्चर्य होता है कि मैं तुम्हें भूल कैसे गया ?..." अमर ने कहा !

"झूठ क्यों बोलते हो अमर बाबू !..." मर्माहत होकर नागिन

बोली।

"मैं झूठ नहीं बोलता...अब तक कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया..."

"क्या शरद बाबू रोज तुमसे मेरे यहाँ आने को नहीं कहते थे?..." नागिन ने पूछा।

"नहीं तो...उन्होंने तो कभी मुझसे नहीं कहा....कभी कहा होता तो मुझे तुरन्त तुम्हारी याद आ जाती..." अमर ने कहा।

"ओह! मैं समझ गई..." नागिन दीर्घ निःश्वास लेकर बोली।

"क्या समझी तुम?...."

"शरद बाबू तुमसे जलते हैं?..."

"ऐसा न कहो नागिन!..शरद भाई देवता हैं और मैं उनका छोटा भाई हूँ...मैं ऐसी बात नहीं सुन सकता कभी..."

"शरद बाबू रोज मुझसे कहा करते थे कि तुमने यहाँ आने से इनकार कर दिया..." बोली नागिन।

"मैंने कभी इनकार नहीं किया और न तो उन्होंने कभी पूछा ही....या हो सकता है कि कभी पूछा हो और मुझे इस समय याद न हो...."

"अब आ गये तो जाने नहीं पाओगे अमर बाबू!..."

"मैं जाना भी नहीं चाहता..." अमर ने कहा।

"आज रात भर यहीं रहो न?...." बोली नागिन।

"रात भर तक?...."

"हाँ!...."

"भाभी मेरी प्रतीक्षा करेंगी!" अमर बोला।

"क्या भाभी ही तुम्हारे लिए सब कुछ हैं अमर बाबू! और मैं कोई नहीं?..."

"क्या बताऊँ...." अमर ने कहा—"मैं भाभी को भी चाहता हूँ और तुम्हें भी..."

"तो एक रात भाभी की याद भूलकर मेरे ही यहाँ रह जाओ अमर बाबू !..."

"अच्छी बात है ..." अमर ने कहा।

सुनकर नागिन को असीम सन्तोष हुआ।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे।

एक दूसरे से सटकर बैठे हुए उन दोनों की नीरवता न जाने कैसी कसमसा रही थी।

"आजकल तुम कुछ बीमार रहती हो क्या ?..." अमर ने पूछा।

"नहीं तो !...कौन कहता है ?..." आश्चर्य से बोली नागिन।

"जब मैं आया तो तुम कौन-सी दवा पी रही थी !...."

"ओह !..." हँस पड़ी नागिन—"उसकी बात पूछते हो अमर बाबू ! वह तो जहर था...."

"जहर...." विस्मय से भर उठा अमर।

"हाँ !..."

"जहर पीती हो तुम ?"

"हाँ, तभी तो नागिन बन सकी हूँ..."

"कौन-सा जहर था वह ?..."

"सभी जहर थे—अफीम, कुचिला, धतूरा, संखिया वगैरह .. इन सबको थोड़ा-थोड़ा रोज पीती हूँ..."

"उफ् !...." डरकर अमर ने अपनी आँखें बन्द कर ली।

"डर गये क्या अमर बाबू !" नागिन हँसने लगी—"इतना जहर न पिऊँ तो लोगों को डसूँ कैसे ?...अगर मैं किसी को काट खाऊँ तो उसकी मृत्यु निश्चित है..."

"हो सकता है...." अमर बोला—"मुझे तो नहीं डँसोगी न ?"

"नहीं मेरे दिल ! तुम्हें कैसे डसूँगी ?..."

कहकर नागिन ने अमर को अपनी बाहों से कस लिया।

अमर कुछ न बोला। ज्यों का त्यों बैठा ही रहा।

थोड़ी देर बाद पूछा उसने—"जहर पीना तुमने कब से शुरू किया ?..."

"जब से बदन पर जवानी का आलम गदराया..." बोली नागिन—"मैं लड़कपन में विधवा हो गई थी। जब जवान हुई तो मेरे जवानी की चमक देखकर मेरे बाबा सोच बैठे कि ब्राह्मण की कन्या पथभ्रष्ट न हो जाय..."

"तो तुम ब्राह्मण की कन्या हो नागिन !"

"हाँ !...."

"तब क्या हुआ ?..." अमर ने पूछा।

"तभी तो बाबा ने थोड़ा-थोड़ा करके मुझे विष-पान कराना प्रारम्भ किया...."

"किसलिए ?...."

"उन्होंने सोचा कि विष की गर्मी से यौवन की उत्तजता मर जायगी.. "

"तो उत्तेजना मरी ?...."

"हाँ ! विष की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती गई और मैं नशे में बुत्त, जहरीली बनकर योनगत वासना से दूर रही...मगर एक दिन..."

रुक गई नागिन—ध्यानपूर्वक देखा उसने अमर के चेहरे की ओर।

"तब क्या हुआ ?" उसे रुकते देखकर अमर ने पूछा। वह पूर्ववत् उत्सुकतापूर्ण भंगिमा धारण किये बैठा हुआ था। उसे इस कहानी में अगम वैचित्र्य प्रतीत हो रहा था।

"मगर एक दिन उसी गाँव के जमींदार के लड़के ने मुझे धक्का दे दिया.." कहने लगी नागिन—"उस धक्के ने मेरे अन्दर की वासना को भड़का दिया। बदन का सारा विष तरल पानी बनकर बह चला। जवानी के आवेग ने मुझे पागल कर दिया और उसी दिन...उसी दिन..."

कहते-कहते हाँफने लगी नागिन।

"कहती चलो...." अमर बोला।

"और उसी दिन मैंने अपने जीवन का पहला भयंकर पाप किया...वासना में, तृष्णा में, यौवन में इतना आनन्द होता है, यह मैंने उसी दिन जाना...उसी के बाद मेरे पतन की कहानी प्रारम्भ हुई। मैं लांछित करके गाँव से निकाल दी गई–मेरे साथ उदय भी था..."

"उदय कौन ?" पूछा अमर ने।

"वही जमींदार का बेटा...!" नागिन बोली—"रेलगाड़ी में हम दोनों साथ ही सफर कर रहे थे। कहीं दूर जाकर अलग दुनिया बसाने का इरादा था हमारा...मगर सारे मन्सूबे धूल में मिल गये...

"कैसे ?"

"जब रेलगाड़ी एक पुल पर से जा रही थी तो एकाएक हमारा डिब्बा पटरी पर से उतर गया और नदी में आ गिरा...."

"ओह !...." कहकर अमर ने अपना मस्तक पकड़ लिया। उसके मस्तिष्क में दर्द होने लगा था।

"मेरा उदय....मेरा सर्वस्व...नदी के गर्भ में समा गया और मैं ठोकरें खाने के लिए बच गई...पास में पैसा नहीं था सो भीख माँगते-माँगते शरीफन के दरवाजे पर आई तो उसने मुझे ऊपर बुलाया और फाँस लिया–तब से इसी नरक में पड़ी घुट रही हूँ अमर बाबू !..."

"बड़ी दर्दनाक कहानी सुनाई तुमने नागिन !..मैं नहीं जानता था कि तुम्हारा इतिहास इतना करुणाजनक है..."

"उस दिन पहले-पहल तुम्हें देखा तो मैं गिरने-गिरने-सी हो गई अमर बाबू ! और तभी महफिल से उठकर चली आई..."

"क्यों ?...."

"मेरे प्यारे उदय की सूरत बिल्कुल तुम्हारी जैसी थी !...."

नागिन बोली—"तुम दोनों में तनिक भी अन्तर नहीं ! वही चाल-ढाल और वही स्वर पाया है तुमने अमर बाबू और इसीलिए मैं तुम्हें प्यार करती हूं, तुम पर मरती हूं। विधाता की सृष्टि में ऐसा रूप-सामञ्जस्य मैंने कहीं नहीं देखा ..."

"गाँव में तुम्हें लोग किस नाम से पुकारते थे ?..."

"नगीना नाम था वहाँ, जो यहाँ आकर नागिन हो गया है... कोई ज्यादा अन्तर तो नहीं आया अमर बाबू ! ..."

"नगीना ! मुझे तुमसे पूरी सहानुभूति है !..."इस बार अमर ने नगीना का हाथ पकड़ा—"यदि मैं तुम्हारी वेदना कम करने में कुछ भी सहायक हुआ तो अपने जीवन को सार्थक समझूंगा..."

"मैं तुमसे कुछ और नहीं चाहती अमर बाबू !..." बोली नागिन—"केवल तुम्हें भर-आँख देखती रहना चाहती हूं....तुम मेरे सामने बैठे रहो तो मैं तुम्हारे कलेजे से लगकर अपना सारा दुःख भूली रहूँ !..."

"तो तुमने जहर का पीना छोड़ा नहीं ?"

"आदत कहीं छूटती है अमर बाबू !...अब तो मात्रा दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है..."

कह कर नागिन उठी।

शाम हो चली थी। उसने बिजली जला दी।

गाने वाले कमरे में साजिन्दे आ गये थे और कोठे के नीचे परवाने भी मँडरा रहे थे !

नौकरानी को बुलाकर नागिन ने कहा—"साजिन्दों को घर जाने के लिये कह दो...और रात को किसी को ऊपर मत चढ़ने देना...."

नौकरानी चली गई तो वह अमर से बोली—"अब तुम आराम से बैठो अमर बाबू ! मैं तुम्हारे लिए खाना पका लूं !..."

"तुम क्यों तकलीफ करोगी ?..."

"नौकरानी के हाथ का खाना तुम्हें रुचेगा नहीं....घंटे भर

मैं ही तैयार कर लूंगी !...."

और चली गई नागिन ।

अमर पलंग पर लेटकर उसके विषय में सोचने लगा ।

परन्तु उसकी कहानी का अधिकांश तो वह भूल ही गया था ।

नगीना खाना पकाने में लगी थी ।

साजिन्दे चले गये थे ।

नित्य की भाँति आज भी शरद आया तो द्वार बन्द देख कर उसे महान आश्चर्य हुआ ।

उसने कुंडी खटखटाई ।

नौकरानी ने दरवाजा खोला तो शरद ऊपर जाने लगा ।

"ऊपर मत जाइये...." नौकरानी ने रोका—"बाई जी बीमार हैं ।"

"क्या बीमारी है ?.. " शरद ने पूछा ।

"मुझे नहीं मालूम..." नौकरानी ने उपेक्षा से कहा ।

उसकी उपेक्षा देखकर शरद ने रुपयों का तीर चलाया और छन्न से दो रुपये उसके हाथ पर रखकर बोला—"बाई जी से जा कर पूछ आओ... !"

चाँदी की ठोकर खाकर नौकरानी नत हो गई और चुपचाप ऊपर चली गई ।

शरद वहीं खड़ा रहा ।

नौकरानी लौट आई तो शरद ने पूछा—"क्या कहा उन्होंने ?"

"उन्होंने कहा है कि वे किसी से भी नहीं मिल सकतीं, चाहे लाट साहब ही क्यों न हों...." नौकरानी नगीना की बातें दुहरा दी ।

सुनकर क्रोध हुआ शरद को !

"तुमने मेरा नाम बताया था ?" उसने पूछा ।

"आपका नाम मुझे क्या मालूम ?...." बोली नौकरानी—"अब इस समय आप जाइये । मिलना हो तो कल दिन में आइयेगा..."

तिरस्कृत होकर लौट पड़ा शरद ।

आज एक वेश्या उसके धन पर ठोकर मार दी थी—

शरद का मुख तमाचे-खाये जैसा लाल हो गया था। वह सोचता चला आ रहा था कि आज जरूर वह किसी मर्द को लेकर लेटी है।

रसीले वातावरण में रहकर वह कबतक अपने को सम्हाल सकती है ?

आज वह सोने की नथ पीतल में बदल गई।

कुड़मुड़ाता, भुनभुनाता चला गया शरद।

नगीना का भोजन तैयार था।

थाल में परस कर लाई वह और दोनों ने साथ-साथ भोजन किया।

पान खाकर अमर पलंग पर आ बैठा।

नगीना भी उसकी बगल में आ रही।

दिल खुल गये थे दोनों के। आँखें मिल गई थीं ! तीर चल चुके थे। सो घुल-मिल गये दोनों।

"ताश खेलना जानते हो अमर बाबू !..." नगीना ने पूछा।

"क्यों ?..."

"थोड़ी देर तक खेलकर जी बहलाया जाय ! ..."

"क्या ऐसे तबीयत नहीं बहल रही है ?..." अमर बोला।

"मगर इस तरह के दिल बहलाव से हम बहुत दूर निकल जायेंगे कि फिर वहाँ से लौट सकना असम्भव हो जायगा अमर बाबू !...."

"ठीक कहती हो तुम..." अमर बोला—"परन्तु ताश का खेल मुझे आता नहीं....शायद पहले जानता रहा होऊँ..."

"शतरंज जानते हैं ?...."

"मैं खाना, पीना, सोना, लिखना और पढ़ना ही भर जानता हूँ नगीना !....पहले शायद और भी बहुत कुछ जानता था परन्तु

अब तो भूल सब गया है !....'

"तो मैं कोई गाना गाऊँ ?"

"हाँ, अवश्य !..." अमर ने उत्साहित होकर कहा।

और नगीना धीरे-धीरे गुन-गुनाने लगी—

नैया को किया हमने खेवैया के हवाले—
अब वो ही सम्हाले।

तूफान से कहते हो कि आँचल में छिपा ले—
हम नाग हैं काले।

तुम किसको डराते हो उमड़ कर ऐ समन्दर
हम छोड़ चुके नाव को तूफान के अन्दर
तूफान से डरते नहीं हम डूबने वाले—
दुनिया से निराले।

हम विष हैं, जो मिटाना हो तो होठों से लगा ले—
हम शोले हैं, जो चाहे जिगर अपना जला ले—
एक दर्द है, चाहे जो इसे दिल में बसा ले—
अरमान निकाले॥

गा कर चुप हो गई नगीना।

चार नेत्र आपस में मिले तो दो नेत्र शरमा कर नीचे झुक गये। नगीना की उस बाँकी अदा ने अमर का हृदय मोह लिया।

"तुम बहुत अच्छा गाती हो नगीना ! मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता ? .." बोला अमर।

"प्रशंसा कराना तो मैं चाहती नहीं अमर बाबू ! केवल अपनत्व की भिक्षा चाहती हूँ ?..." नगीना ने कहा।

"वह तो तुम पहले ही पा चुको हो नगीना !...अच्छा अब रहने दो .. रात अधिक हो चली है। अब सोना चाहिये !..." बोला अमर।

नगीना उठी। झटके में उसके सर की साड़ी सरक पड़ी। चोली में कसमसाते हुए उन्नत उरोज जैसे तड़प कर उठ बैठे।

नगीना ने वह साड़ी खोलकर रख दी और दूसरी पहनने लगी।

अमर एक टक उस वस्त्र-परिवर्तन-कर्त्री का अगम सौन्दर्य देख रहा था। उसकी एक-एक थिरकन और एक-एक कम्पन को लक्ष्य कर रहा था।

दूसरी साड़ी पहन कर नगीना ने चोली भी खोलकर रख दी।

और इसके बाद बिजली का स्विच दबा कर अन्धेरा कर दिया उसने।

"डरेंगे तो नहीं अमर बाबू !..." अन्धेरे में ही पूछा उसने।

"क्यों ?..."

"साथ-साथ सोना जो है !..." बोली नगीना।

"मेरा शरीर इस माने में फौलाद साबित होगा नगीना !..." अमर ने कहा।

और एक ही पलंग पर वे दोनों "३६" होकर सो रहे।

•

नागिन से जला-भुना शरद आज पैदल ही चला जा रहा था। हृदय उसका आवेग से भर उठा था।

नागिन ने उसे अपने कोठे पर घुसने नहीं दिया था; यह उसके लिये अत्यन्त अपमान की बात थी।

वह उस अपमान को भूलना चाहता था। वह अपने हृदय को घुमा-फिरा कर दूसरे रास्ते पर ले जाना चाहता था।

परन्तु उसका हृदय जो था, वह नागिन की ही बात सोचता चला जा रहा था। रह-रह कर वह अपमान, एक पीड़ा बन कर उभर आता था।

सामने ही शहर का सबसे बड़ा होटल "परिस्तान" था।

हृदय की ग्लानि से ऊबकर शरद धड़धड़ाता हुआ होटल की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

मैनेजर से एक कमरा रात भर के लिये रिजर्व कराया और

दस रुपये किराये के देकर वह बाईस नम्बर के कमरे में आ बैठा।

खूब सजा था कमरा। बड़ी-बड़ी तस्वीरें लगी हुई थीं, जो विश्वकर्मा नामक किसी चित्रकार द्वारा बनाई गई थीं।

छत से लगा पंखा घूम रहा था। बड़ी-सी मेज के सामने शीशे का एक विशाल टुकड़ा लगा था। दो तीन कुर्सियाँ और एक गद्देदार पलंग भी थी।

बेयरा को बुलाने के लिए घंटी भी थी।

शरद ने घण्टी बजाई।

और बेयरा झुक कर सलाम करता हुआ आ पहुँचा।

"हाफ ड्राईजिन और दो बोतल सोड़ा!...." शरद ने बेयरे को आज्ञा दी।

बेयरा चला गया और थोड़ी ही देर में शराब और सोड़ा लिये हुए लौटा।

मेज पर उसने ये चीजें सजा कर रख दीं। एक प्लेट में बर्फ के टुकड़े भी रख गया।

"सुनो!..." जाते हुए बेयरे को पुकारा शरद ने।

"यस सर!" सलाम कर बेयरा सामने आ खड़ा हुआ।

"फर्स्ट क्लास की छोकरी!..." शरद ने कहा।

"बेहतर है।..." कहकर वह चला गया।

शरद कुर्सी पर बैठा हुआ सोचने लगा—आज वह नागिन की याद भुलाकर ही रहेगा। वह देखेगा कि दुनिया में केवल नागिन के ही पास सौन्दर्य है या और किसी के पास।

सोचता हुआ बैठा रहा वह।

आधे घण्टे के बाद बेयरा लौट आया।

"लाये?..." शरद ने पूछा।

"यस सर!..सभी फैमिली गर्ल्स हैं हजूर!.." बेयरा ने कहा।

"बुलाओ!..." शरद ने आज्ञा दी।

दूसरे ही क्षण उस कमरे में सौन्दर्य का जमघट-सा लग गया।

सात युवतियाँ थीं—सभी एक से एक बढ़कर।

सभी सम्प्रदाय की—हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन, ऐंग्लो-इण्डियन, पारसी, मराठी आदि।

शरद की अभ्यस्त आँखें सभी युवतियों को घूरने लगीं—सौंदर्य की परख करने लगीं।

अन्त में शरद ने एक को चुन लिया। उसे वहीं छोड़कर, बाकी सब चली गईं।

"बैठो!..." शरद ने उससे कहा।

और वह बिना किसी हिचक के शरद की गोद में आ बैठी।

हर दिन वासना का खेल खेलने वाली वह युवती, पुरुष का प्रत्येक इशारा समझती थी।

शरद कुछ देर तक उससे खेलता रहा।

पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मुझे लोग गुलेनार कहते हैं मेरे सरकार!..." कहकर वह अपने आप ही शरद के बदन से लता की तरह लिपट गई।

"पीती हो?...." शरद ने पूछा।

"हजूर की इजाजत हो तो मुझे कोई एतराज नहीं!..." उसने कहा।

"तब आओ!"

कहकर शरद मेज के पास आ बैठा।

गुलेनार उसे पिलाने लगी खुद भी पीती गई।

खाँसकर बेयरा फिर अन्दर आया और शरद के सामने तश्तरी में रखा हुआ बिल पेश किया।

पचास रुपया गुलेनार के लिए—पाँच रुपये आठ आने ड्राइ-जिन के लिए और एक रुपये बर्फ और सोडा के लिए।

कुछ छप्पन रुपये आठ आने का बिल था।

कमरे का किराया तो शरद पहले ही दे चुका था।

शरद ने साढ़े छप्पन रुपया बेयरा के हवाले किया और एक

रुपया उसे ईनाम भी दिया।

बेयरा अदब से सलाम करता हुआ चला गया।

शरद ने इशारा किया तो गुलेनार ने उठकर दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया तथा स्विच आफ करके बिजली बुझा दी!

!"और तब..."

× × ×

और जब दो बजे रात को शरद होटल से बाहर निकला तो शराब की मदहोशी से उसके पैर कांप रहे थे।

एक नागिन को भूलने के लिए उसने दूसरी नागिन को गले से लिपटाया था और तीन-चार घण्टे में जवानी की आखिरी मञ्जिल तय की थी।

फिर भी वह अपने अपमान की बात भूल नहीं सका था।

शरद को बोतल एवं अपने यौवन की मदिरा पिलाकर गुलेनार चली गई थी और उसे पचास-साठ रुपये की चपत मार गई थी।

फिर भी शरद का आवेग कम नहीं हुआ था।

इस समय वह पहले से भी अधिक व्यग्र था।

घर आया तो सोये हुए दरबान ने बड़ी मुश्किल से द्वार खोला।

उसके पिता चार दिन से बम्बई गये हुए थे, अतः कोई यह पूछने वाला नहीं था कि वह इतनी रात तक कहाँ रहा?

शरद सीधे अपने कमरे में आया।

उसने सोचा था कि रजनी सो गई होगी परन्तु यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि वह अब तक कुर्सी पर बैठी ऊँघ रही है, जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो।

शरद ने रजनी की ओर ध्यान से देखा तो नशे में उसे ऐसा लगा, जैसे रजनी नागिन से कहीं अधिक सौन्दर्यमयी हो।

उसने रजनी के पास जाकर धीरे से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

अर्द्धसुप्त रजनी चौंक पड़ी।

"तुम अब तक सोई नहीं !..." पूछा शरद ने।

"नहीं !..." रजनी ने उत्तर दिया—"अब तक अमर नहीं आया..."

अमर का नाम सुन, शरद का रोम-रोम भभक कर जल उठा।

तो यह रजनी स्वयं उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रही है, वरन् अमर की बाट देख रही है।

इस अमर ने उसके चारों ओर काँटे बिछाना प्रारम्भ कर दिया है।

घर में भी और बाहर भी, सभी जगह उसी का सम्मान है और शरद तो जैसे दूध की मक्खी हो गया है।

जिस अमर को एक दिन उसने अपने यहाँ शरण दी थी, वही अब पैर पसारते-पसारते उसके कलेजे पर लात रख देना चाहता है।

"तो तुम अमर की प्रतीक्षा कर रही हो ?..." शरद ने उपेक्षा से पूछा।

"क्या करूँ ?..." बोली रजनी—"जाने कहाँ है वह ? सुबह से ही निकला है और अब तक नहीं आया...पता नहीं दोपहर और शाम को उसने खाया होगा या नहीं..."

"रजनी !..." तेज आवाज में बोला शरद।

रजनी उस उच्च स्वर से चौंक पड़ी।

"आज आप ज्यादा पीकर आये हैं क्या ?..." उसने पूछा।

"मैं चाहे जितना पिऊँ...मगर मैं यह कभी नहीं सहन कर सकता कि तुम मुझे छोड़ कर अमर की फिक्र करती फिरो..."

"अमर बेसहारा है, असहाय है...उसकी फिक्र न करूँ तो कौन यहाँ बैठा है उसका ?...." रजनी ने नम्र स्वर में कहा।

"एक तुम्हीं उसका सहारा नहीं हो !...." गरज कर बोला शरद—"तुमने उसे नदी में डूबने से नहीं बचाया था....तुमने उसे यहाँ आश्रय नहीं दिया था...यह सब मैंने किया था...."

"हम आप कोई दो हैं क्या ?... हमारा आपका बँटवारा क्या हो सकता है कभी ?" रजनी ने नत मस्तक होकर कहा ।

"मैं सब जानता हूँ रजनी ! मुझसे कोई बात छिपी नहीं है !"

"क्या जानते हैं आप ?"

"यही कि मुझसे निराश होकर अब तुम अमर से प्रभावित हो रही हो....यह अच्छा नहीं होगा तुम्हारे हक में..."

"आप भी कैसी बातें करते है ।...." बोली रजनी—"स्त्री के हृदय को पढ़ने की कोशिश कीजिये...चलिये सो जाइये....सबेरा होने को है..."

और रजनी ने शरद को चारपाई पर सुला दिया तथा बत्ती बुझा कर स्वयं भी उसकी बगल में लेट गई ।

"तुम अपने कमरे में आओ रजनी !...." शरद ने कहा ।

"मैं नहीं जाती !..." बोली रजनी—"यह कमरा भी तो मेरा ही है...."

"कहता हूँ कि मुझे आराम से सोने दो... चली जाओ !..."

"मैं नहीं जाऊंगी...नहीं जाऊंगी !..." कह कर रजनी शरद के मदहोश शरीर से लिपट पड़ी—"आप सारा धन बाजार में ही लुटा देना चाहते हैं और घर पर एक कौड़ी भी देना नहीं चाहते । बाजार की औरतों के पास जो कुछ है, वही मुझमें भी तो है...तो आप मुझे छोड़ कर क्यों दर-दर भटकते हैं..."

इस बात का शरद ने कुछ उत्तर न दिया ।

कदाचित् उसे नींद आ गई थी ।

रजनी कुछ देर तक शरद को जगाने का प्रयत्न करती रही परन्तु जब वह नहीं जागा तो शिथिल होकर पड़ रही ।

आज उसे अत्यधिक पीड़ा हो रही थी, यह सोचकर कि पति का सुख क्या होता है, उसने कभी जाना ही नहीं ।

और उसका पति भी कैसा है कि बाजार में ठोकरें खाकर अपनी वासना शान्त कर लेता है और घर की पत्नी का यौवन यों

ही तड़पता हुआ कसक-कसक कर रह जाता है।

कैसा उपेक्षित जीवन है रजनी का !

उसकी अपनी आकांक्षा, अपनी लालसा और अपनी तृष्णा का जैसे कुछ मूल्य ही नहीं—जैसे केवल पति का नाम जपती हुई उसे अपनी जवानी काट देनी है....और कुछ नहीं मिलना हैं उसे।

सोचकर रजनी का हृदय अगम घृणा से, प्रबल विद्रोह से भर उठा।

पति के जूते खाने वाली नारी कभी सुख नहीं पा सकती।

यह बीसवीं सदी है, जिसमें नारी की सेवा का, पत्नी के त्याग का कोई महत्व नहीं। महत्व है तो केवल अपनी-अपनी तुष्टि का।

सो जब पुरुष सदैव निरंकुश होकर पत्नी को ठोकरें मारता रहता है तो नारी ही दिन रात पति-पति क्यों रटा करे ?

जब पुरुष दूसरी नारियों द्वारा अपनी तृष्णा, अपनी भूख मिटा लेता है तो नारी ही क्यों शास्त्र के बन्धन में पड़ी रहे और तिरस्कार सहे !

आज की नारी तभी उन्नत हो सकती है, जब कि वह ईंट का जवाब पत्थर से दे और एक पति को ठोकरें मार कर द्रौपदी की तरह पांच-पांच पति करे....

एकाएक रजनी का शरीर कांप उठा। सोचते-सोचते वह न जाने कहाँ जा पहुँची थी ?

जाग्रत विद्रोह पंख फैलाकर उड़ते-उड़ते वहाँ तक जा पहुँचा था कि रजनी को भय लगने लगा।

कहीं यह विद्रोह उसे पथ से दूर न उठा फेंके ?

कहीं वह क्षणिक आवेग में पड़कर अपना कर्त्तव्य, अपनी निष्ठा और अपना पवित्र सम्बन्ध न भूल जाय ?

एक क्षण के लिये प्रबल-विद्रोह-धार में व्याघात पहुँचा परन्तु दूसरे ही क्षण वह धारा व्याघात को भी बहा ले चली।

और रजनी पुनः अस्त-व्यस्त-सी उन्हीं विचारों में लीन हो गई।

नहीं ! वह इस बन्धन को तोड़ देगी।

यदि उसका पति पथभ्रष्ट है तो वह भी सही।

वह अब पति की दासी होकर नहीं रहेगी।

एकाएक वह उठ बैठी। सोते हुए शरद की छाया अन्धकार में देखकर उसे भय-सा लगने लगा। वह दौड़कर अपने कमरे में आई और अकेली ही चारपाई पर सो रही।

नींद तो आती ही नहीं थी परन्तु एकाएक अमर की याद आ गई उसे। सोचने लगी वह उ े के विषय में।

यह अमर भी कितना अचैतन्य है, कितना भोला है कि वर्तमान को छोड़कर भूतकाल को एकदम भूल जाता है।

पता नहीं कहाँ होगा, किसके साथ होगा, क्या खाया होगा ?

कहीं कोठी का रास्ता भूलकर इधर-उधर भटक तो नहीं रहा है ?

रजनी को प्रतीत हुआ कि वह अमर के लिए आवश्यकता से अधिक चिन्तित हो उठी है।

ऐसा क्यों ? क्या पति द्वारा तिरस्कृत नारी, अनजाने में ही अमर को चाहने लगी है ?

नारी तो पुरुष का सहारा खोजती ही है—

और कभी-कभी पति से निराश होकर वह दूसरे पुरुष का सहारा पकड़ लेती है।

तो इन स्वेच्छाचारी पुरुषों को क्या कहा जाय, जो एक नारी को गले बाँधकर भी, हजारों नारियों को भर आँख घूरते हैं।

और इसमें नारी का ही दोष क्या ? समाज ने नारी को जो उपेक्षा दे रखी है, उससे ऊब कर कभी-कभी नारी भी विद्रोह से भर उठती है—

और तब जो घटनायें घटती हैं, उन्हें देखकर लज्जा से आँख मूँद लेनी पड़ती है।

× × ×

आज शरद दिन चढ़े तक सोता रहा।

नौ बजे उठा तो स्नान करके और थोड़ी-सी चाय पीकर वह चल पड़ा नागिन के घर।

कार दौड़ी जा रही थी और उस पर बैठा हुआ शरद सोच रहा था—आज वह उस हृदयहीन वेश्या के कोठे पर घुस जायगा और उसे जी भरकर खरी-खोटी सुनायेगा।

उसकी जेब में इस समय दस हजार के नोट पड़े थे।

वह उन नोटों को उसके सामने पटक देगा और कहेगा कि रुपयों की बाँदी ! ले रुपये !...बोल, कितना चाहती है तू एक रात के लिए।

कार रुकी और शरद उतर कर तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ गया।

दरवाजा खुला था। वह कोठे में घुस पड़ा और नागिन के कमरे में आया।

परन्तु वहाँ का दृश्य देखकर उसके पैरों तले साँप पड़ गया।

उसने देखा—अमर और नागिन एक दूसरे को लपेटे हुए मीठी-मीठी बातें कर रहे हैं।

"अमर !..." तेज आवाज में पुकारा शरद ने।

दोनों उसकी आवाज सुनकर चौंक पड़े।

उन्हें ऐसे असमय शरद के आने का विश्वास नहीं था।

और न तो शरद को ही विश्वास था कि वह अमर को नागिन के कोठे पर देखेगा—सो भी ऐसी अवस्था में।

नगीना मुस्कराती हुई उठ खड़ी हुई।

बोली—"आइये, शरद बाबू !..."

शरद आकर कुर्सी पर बैठ गया। वह अत्यन्त क्रोधित था। अमर को घूर-घूर कर देख रहा था वह।

"तुम रात भर तक यहीं थे क्या ?..." कटु स्वर में शरद ने अमर से पूछा।

"हाँ !..." नगीना बोली—"मैंने ही इन्हें रोक लिया था...आप

इन्हें कुछ न कहें..."

"मगर वहाँ इसकी भाभी रात भर तक इसकी प्रतीक्षा करती रही....एक क्षण के लिए भी नहीं सोई !...." शरद ने कहा।

सुनकर अमर को महान दुख हुआ।

उफ् ! उसने अपनी भाभी को आज कितना कष्ट दिया था।

"छोड़िये इन बातों को शरद बाबू।..." नागिन बोली–"मैं आपके लिए पान लेती आऊँ..." कहकर नगीना दूसरे कमरे में चली गई।

"तुम यहाँ कब से हो ?..." शरद ने क्रोधित स्वर में अमर से पूछा।

"कल दोपहर से !..." अमर ने नम्र स्वर में कहा।

"अब तक तुम घर की याद भूले रहे ?...." शरद की आवाज घृणा से भरी थी।

"यह तो मेरी आदत है शरद भाई !"

"चुप रहो तुम अमर !...यह बहाना बहुत चल चुका तुम्हारा ! जाओ, सीधे घर जाओ...तब पूछूँगा तुमसे..."

शरद का क्रोध देखकर अमर सन्न हो गया था।

वह चुपचाप उठकर दरवाजे की ओर बढ़ा परन्तु एकाएक ठिठक खड़ा हो गया।

"क्यों।....रुक क्यों गये...."

"कोठी का रास्ता भूल गया हूँ शरद भाई !..." भयभीत स्वर में अमर ने कहा—"जाऊँगा कैसे ?"

"नीचे कार खड़ी है, चले जाओ उसी पर !..." बोला शरद–"कोठी पर पहुँच कर उसे मेरे लिये वापस भेज देना...."

अमर सर झुकाकर अपराधी की भाँति चला गया।

थोड़ी ही देर बाद हाथ में पान के बीड़े लिए हुए आई नगीना।

अमर को न देखकर उसने शरद से पूछा—"अमर बाबू कहाँ गये।"

"उसे मैंने घर भेज दिया...." शरद ने कहा।

सुनकर नगीना का मुख पीला पड़ गया। अमर के आकस्मिक बिछोह से उसे अत्यन्त दुख हुआ।

"आप ने उन्हें इतनी जल्दी क्यों भेज दिया?..." पूछा उसने।

"क्या रात भर तक उसे अपने साथ रखने से जी नहीं भरा तुम्हारा।" व्यङ्गपूर्ण स्वर में बोला शरद।

"कैसी बातें करते है आप?"

"अब तो यह बड़ी-सी नथ उतार डालो नागिन बाई!..."

"क्यों।..."

"अब इसकी शान उतर चुकी है!...." शरद ने कहा—"बीबी शरीफन इसी नथ के बदले हजारों पाने का स्वप्न देख रही थी और वह स्वप्न देखती देखती हमेशा के लिए सो गई... तो तुमने स्वतन्त्र होकर मुफ्त में ही....अगर चाहती तो तुम्हें इसके बदले दस-पाँच हजार मिल ही जाते..."

"चुप रहिये शरद बाबू!.." आवेश में आकर बोली नगीना।

"चुप क्यों रहूँ।...तुमने रात में मुझे यहाँ घुसने तक न दिया और अब दिन में आया हूँ, तो रुख भी नहीं मिला रही हो...एक इन्सान यह कब तक बर्दाश्त कर सकता है।..."

"आप मेहरबानी करके यहाँ से चले जायें शरद बाबू!..."

"मैं जाने नहीं आया हूं नागिन! मैं अपने साथ दस हजार के नोट लाया हूँ....आज तुम्हें जीत कर ही जाऊँगा! रुपयों की बाँदी! लो, कितना रुपया लोगी तुम!..."

कहकर शरद ने नोटों का बण्डल नगीना के आगे फेंक दिया।

नगीना ने क्रोध एवं उपेक्षा की दृष्टि से उन रुपयों की ओर देखा और पैरों से वह गड्डी ठेल कर शरद के आगे कर दी।

"नागिन!...." क्रोध से गरज उठा शरद।

"रुपये रख लो शरद बाबू!...मैं थूकती हूँ तुम्हारे रुपयों पर!"

"तुम मेरा अपमान कर रही हो, मैं तुम्हें मिटा दूंगा...

तुम्हारा खून करा दूँगा...."

"शरद बाबू !...." नगीना भी उत्तेजित होकर बोली—"मैं शरीफों के लिए शरीफ हूँ और जलीलों के लिए जलील ! मेरा नाम नागिन है इसे याद रखिये...."

"मैं जानता हूँ तुम्हारा नाम.. एक दिन तुम्हारा दाँत न तोड़ दिया तो मेरा नाम नहीं...."

"तुम क्या मेरे दाँत तोड़ोगे शरद बाबू ! समझ रखो तुम कि मैं सिर्फ नाम की ही नागिन नहीं हूँ, मैं असल में नागिन हूँ। मेरे शरीर के पोर-पोर में जहर भरा है—तुम्हें डँस लूँ तो साँस भी न ले सको, उठ भी न सको...."

"यह भभकियाँ दूसरों को देना नागिन !..." शरद बोला—"मैं जानता हूँ कि तुममें कितना जहर है...उसी जहर को उतरवाने के लिए तो अमर को रात भर तक रोक रखा था तुमने..."

"अपनी जबान सँभालो शरद बाबू !..देखो, मैं तुम्हें एक तमाशा दिखाती हूँ !...." नगीना ने कहा और नौकरानी को पुकारा।

नौकरानी दौड़ी आई।

नगीना बोली उससे—"वह साँप तो उठा लाओ, जो आज सुबह आँगन में पकड़ा गया था !..."

नौकरानी काँप उठी।

बोली—"मुझसे नहीं आयेगा बीबी ! मैं तो डर से मर जाऊँगी।"

"अच्छा, मैं खुद लाती हूँ !...."

कह कर नगीना चली गई और थोड़ी देर में, कपड़े से बँधी हुई एक हँड़िया हाथ में लिये लौट आई।

शरद ने हंड़िया के भीतर से ही साँप की तीव्र फुफकार सुनी तो समझ गया कि यह साँप वास्तव में बड़ा भयंकर है।

"देखो शरद बाबू !...."

कहकर नगीना ने हँड़िये का मुंह खोल दिया।

तीव्र फुफकारें भरता हुआ, मोटा काला-सा भयंकर साँप, फन

फाड़ कर उठ खड़ा हुआ। डर कर शरद पलंग पर जा चढ़ा।

निर्भयता से नगीना ने अपना हाथ बढ़ा कर सांप का मुँह पकड़ लिया।

सांप बेबस हो गया—काट न सका तो नगीना के कोमल हाथों में लिपट कर चूड़ी बन गया–कितनी भयानक थी वह चूड़ी।

"देखा शरद बाबू!..." हंस कर बोली नगीना–"मैं वास्तव में नागिन हूँ और नागों से खेलती हूँ..."

"उसे छोड़ दो नागिन! मुझे डर लगता है!" शरद ने कहा।

"अभी तो तुमने तमाशा देखा ही नहीं...." बोली नागिन।

शरद की सांस तेजी से चलने लगी थी, नगीना का वह दुस्साहस देख कर।

और इसके बाद की घटना देख कर तो उसका खून ही जम गया।

उसने देखा...नगीना ने सांप का फन छोड़ दिया और क्रोधित सांप ने उसके हाथ में जोरों से फन मारा कि खून बह चला।

"उसने तुम्हें काट खाया नागिन! छोड़ो उसे, छोड़ो...." शरद चिल्लाया।

परन्तु नगीना ने जैसे सुना ही नहीं।

उसने सांप के फन पर एक तमाचा मार दिया।

अब तो सांप क्रोध में भर कर उबल पड़ा और उसने नगीना को कई जगह डँस लिया। नगीना ने उसे अपने हाथ से छुड़ा कर जमीन पर छोड़ दिया और आप हँसती हुई आकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

शरद आश्चर्य में भर कर नगीना के चेहरे की ओर देख रहा था।

ऐसे विषैले सांप के केवल एक बार काटने से जहाँ बलवान से बलवान मनुष्य तत्क्षण मर सकता था, वहीं सात-सात बार काटने

पर भी नगीना का मुख वैसा ही उज्ज्वल बना रहा।

तनिक भी कालिमा नहीं आई। जरा भी जहर नहीं भिना।

"उस साँप की दशा तो देखो शरद बाबू !" नगीना ने हँसते हुए कहा।

शरद की दृष्टि उधर पड़ी तो देखते ही अवाक् रह गया वह।

उसने देखा—काला-सा, भयानक वह साँप इस समय निश्चल होकर जमीन पर सीधा पड़ा था।

जीवन के लक्षण न थे उसमें।

नगीना ने उसे उठाया तो वह रस्सी की तरह सीधा लटक गया।

"यह मर गया..." नगीना बोली।

"उफ्..."

"मेरे खून में कितना जहर है; यह तुमने देख लिया न शरद बाबू !..."

"देख लिया...." हताश स्वर में कहा शरद ने।

"मैं अब मनुष्य से खेलने लायक नहीं रह गई हूँ—अब तो केवल नागों से ही खेल सकती हूँ...मनुष्यों से खेलूँ तो वे एक क्षण भी न बचें...."

"तुम वास्तव में नागिन हो !...." शरद ने कहा—"मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी भयङ्कर हो सकती हो...."

"अब तो जान लिया न ?...तशरीफ ले जाइये यहाँ से ..."

"जा रहा हूँ !...." उठता हुआ बोला शरद—"मगर तुमने मुझे जो दुख दिया है, मेरा जो अपमान किया है, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता...और उस अमर को, जिसने मेरे रास्ते में काँटे बिछाये हैं, अभी चल कर निकाल दूँगा..."

"शरद बाबू !...."

"सुन लो नागिन ! सुन लो तुम कान खोल कर...अमर मेरा कोई नहीं है...वह निपट भिखारी है...तुम्हें कुछ नहीं दे सकता !..."

कहकर शरद जाने लगा।

"सुनिये शरद बाबू !..." नगीना ने पुकारा।

"क्या कहती हो ?..." दरवाजे पर रुक कर शरद बोला।

"अमर बाबू आपके भाई नहीं हैं ?" नगीना ने पूछा।"

"नहीं !"

"तब कौन हैं ?...."

"कोई नहीं !..." हँस कर बोला शरद—"मैं जानता भी नहीं कि वह कहाँ का है, कौन है और क्या नाम है उसका ?..."

"आपको वे कहाँ मिले ?..."

"नदी में बहता हुआ मिला था...." शरद ने कहा—"मैंने उसकी जान बचाई। उसे अम्नीशिया हो गई है और वह अपना नाम-ग्राम तक भूल बैठा है... वह भिखारी है नागिन !....निपट भिखारी !"

"उफ् शरद बाबू !..." नगीना को गश-सा आ गया। उसकी जबान जड़ हो गई...मुख से बोल नहीं सकी कुछ।

अट्टहास करता हुआ शरद जाने लगा।

नगीना ने पुकारा—"सुनिये !....शरद बाबू, सुनिये !..."

वह पुकारती ही रह गई और शरद तेजी के साथ चला गया।

× × ×

कार पर से उतर कर जब अमर कोठी में घुसा तो वह यह सोच सोचकर चिन्तित हो रहा था कि भाभी से अपनी अनुपस्थिति का क्या कारण बतायेगा ?

उधर अपने कमरे में बैठी हुई रजनी भी अमर के ही चिन्तन में लीन थी। कल रात में अपने पति के प्रति जो विद्रोह-भावना उसके हृदय में उदय हुई थी वह अब भी ज्यों की त्यों थी।

वह अमर को पाना चाहती थी—

और अमर को पाकर सारे संसार को ठोकर लगा देना चाहती थी।

उसी समय आ पहुँचा अमर।

पुकारा उसने दरवाजे पर से ही—"भाभी !..."

और भाभी का तार-तार जैसे झनझना उठा उस मृदुल स्वर में।

सर उठाकर उसने अमर की ओर देखा और जैसे उसकी युगों की खोई निधि उसे आ मिली हो कि वह प्रसन्नता से चीख उठी—

"अमर !....मेरे अमर !..." और दौड़कर उसने अमर को अपनी बाँहों में लपेट लिया, अपने कलेजे में भर लिया।

अमर हतबुद्ध-सा हो रहा। कुछ करते न बना उससे। कुछ कह नहीं सका वह।

"तुम रात भर कहाँ थे अमर।...." पूछा रजनी ने, व्यग्र स्वर में।

"भाभी !..."

"कहाँ थे तुम, बोलो...मुझे छोड़कर कहाँ भाग गये थे।..." रजनी जैसे पागल-सी हो रही थी !

उसने अमर को गले से लगाया था पति द्वारा ठुकराये हुए यौवन को उकसाने के लिए, दबी हुई वासना को भड़काने के लिए, सोई पड़ी हुई तृष्णा को उभारने के लिए...

एक पुरुष की अंक-शायिनी बनकर वह यौवन की प्रबल-धारा में बह जाना चाहती थी। परन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसका यौवन-जरा भी नहीं उकसा, उसकी वासना तनिक भी नहीं भड़की, उसकी सोई हुई तृष्णा जगी नहीं, उभरी नहीं।

अमर को कसकर कलेजे से दाब लेने पर भी वह, यौवन की प्रबल धारा में बही नहीं, वरन् उसके हृदय में ममत्व की आग-सी भड़क उठी।

लगा उसे, जैसे युग-युग से सूनी उसकी कोख, आज एक सुकुमार शिशु से भर गई हो।

रजनी का गला भर आया। समझ गई वह वह कि निरंकुश पुरुष, पर-नारियों से अपना जी बदला सकता है परन्तु एक साध्वी

नारी पर-पुरुष के कलेजे से लग कर वासना का आवेग कभी नहीं पाल सकती।

पुरुष वासना का दास है तो नारी निर्मलता की प्रतिमूर्ति।

"अमर।...मेरे बच्चे !...बोलो, कहाँ थे तुम अब तक।.." रजनी ने, बच्चे जैसे कलेजे से लगे हुए अमर से पूछा।

अमर की सारी शंका, रजनी के उस पावन सम्बोधन से बह चली।

अवरुद्ध कंठ से बोला वह—"भाभी !...मुझे क्षमा कर दो भाभी:..."

"कल से ही तुमने खाया नहीं होगा...चलो, खाना खिलाऊँ तुम्हें..." कहकर रजनी ने उसे ला बिठाया।

इस समय वह मातृत्व की प्रतिमा हो रही थी।

रात का विद्रोह गलकर बर्फ-सा पिघल गया था और बह-बहकर बिलीन हो चला था।

रजनी खाना ले आई और अमर के पास पलंग पर बैठकर उसे खिलाने लगी।

उस खाने में आज अमर को अमृत का स्वाद मिला।

खाना खाकर अमर ने हाथ मुंह धोया और फिर रजनी के पास चारपाई पर आ बैठा। दोनों घुल-मिलकर बातें करने लगे।

"अब बताओ कि तुम रात भर कहाँ थे ?..." रजनी ने पूछा।

स्नेहमयी भाभी से झूठ न बोलते बना अमर से।

बोला वह—"नागिन के यहाँ था भाभी..."

"अमर !..." आँखों में कृत्रिम क्रोध लाकर कहा रजनी ने।

"भाभी !...मेरी भाभी !...." अमर इस तरह गिड़गिड़ाने लगा, जैसे कोई बच्चा अपनी माँ से प्रार्थना कर रहा हो।

"तुम अपने को सुधारोगे नहीं अमर !'

"अब सुधार लूंगा !...इस बार मुझे क्षमा कर दो भाभी !.." कहकर अमर रजनी की गोद में गिर पड़ा।

"अमर !..." दरवाजे पर से कोई तड़पा !

दोनों ने देखा—दरवाजे पर क्रोध से काँपता हुआ शरद खड़ा है।

हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए वे दोनों।

तब तक शरद आ चुका था उनके सामने। उसकी हथेली उठी और चट्ट से अमर के गालों पर जा पड़ी, जैसे खून छलछला आया।

चिल्लाकर बोला वह—"बेईमान ! जिसने तुझे आश्रय दिया उसी के साथ यह विश्वासघात ?..."

"चुप रहिये ! .." दीन स्वर में बोली रजनी—"ईश्वर के लिए चुप रहिये ..."

"क्यों चुप रहूँ ?... आँख से देखकर भी आँखें मूँद लूँ ?... एक पलंग पर पास-पास, एक दूसरे से सटकर बैठे हुए तुम दोनों क्या कर रहे थे ?... किस प्रलय की सृष्टि कर रहे थे.... बोलो ?" शरद पर जैसे खून सवार हो गया था।

"आपको भ्रम हो गया है...सच कहती हूँ, सन्देह ने आपको पागल बना दिया है....आप अपने को संभालिये. कृपाकर अपने को संयत कीजिये..." रजनी के गालों पर आँसू की धारायें दौड़ चली थीं।

"मैं पागल नहीं हूँ..." शरद बोला—"मैं संभला हूँ ...मेरा मस्तिष्क संयत है...और मेरी धारणा जो है वह भी सत्य है...."

"नहीं ! वह सत्य नहीं है स्वामी !....सत्य नहीं है वह !"

"चुप रहो रजनी ! मुझे क्रोध से पागल न बनाओ...मैं जानता हूँ...सब जानता हूँ...तुम मेरे सीने पर लात मार रही हो...तुमने मेरी इज्जत में काला चाँद उगा दिया ..आवेश में आकर तुमने इस भिखारी से अपना नाता जोड़ा है..."

"मैं आपके पैर पड़ती हूँ ..आप अपनी जबान रोकिये....वह भेद की बात दबी रहने दीजिये, नहीं तो अमर ...अमर !..."

"मर जाय अमर, मुझे इसकी परवाह नहीं..." शरद ने

कहा और पैर पकड़ कर लटकी हुई रजनी के पञ्जर में कसकर लात मारी।

हाय करके रजनी लोट गई जमीन पर।

"शरद भाई!..." भाभी की दुर्दशा देखकर अमर विचलित हो उठा।

वह पहले से ही चित्रलिखित-सा, किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा हो रहा था—

उसकी समझ में ही न आ रहा था कि यह झगड़ा क्यों है?

इस गृह-कलह की आग कहाँ से उभरी?

सोचते-सोचते उसके मस्तिष्क में भीषण झंझावात-सा उठ खड़ा हुआ था और वह पीड़ा से बेचैन हो उठा था।

और जब शरद ने भाभी पर लात चलाया तो वह चीख पड़ा—

"क्या करते हो यह शरद भाई?..."

"मुझे भाई न कहो...मुझे शरद भाई न कहो!..." चिल्लाता हुआ शरद दौड़ा अमर की ओर।

उसकी आँखें लाल-लाल हो रही थीं, जैसे वह अभी-अभी अमर का खून कर डालेगा।

सहम कर अमर पीछे हट गया।

शरद चिल्लाता रहा—"मुझे भाई मत कहो, मैं तुम्हारा भाई नहीं हूँ...तुम भिखारी हो....भिखारी!....तुम्हें कोई नहीं जानता...तुम स्वयं अपने को नहीं जानते..."

"अनर्थ न करो स्वामी!" रजनी रोती हुई बोली।

"वेश्या कहीं की!..."

कहकर शरद ने रजनी को दूसरी लात मारी और दौड़कर अपने कमरे में चला गया।

शराब के तीव्र नशे से वह पागल-सा हो उठा था।

"मैं करूँगा...अनर्थ करूंगा..सुनो-सुनो...अमर!....तुम

अमर नहीं हो।"

"शरद भाई।"

"अमर !...." रजनी बोली—"तुम दूसरे कमरे में चले जाओ.... इनकी आँखों के सामने से हट जाओ।"

"हाँ-हाँ, हटा दो इसे।...." शरद चिल्लाया—"और अपनी आँख में बन्द कर लो इसे रजनी तुम !...."

"भाभी !...." बोला अमर—"शरद भाई को ऐसी अवस्था में छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा...."

"तुम हट जाओ अमर यहाँ से....ये आज ज्यादा पीकर आये हैं..." रजनी ने कहा।

यह सच था कि आते समय शरद बेहद शराब पीकर आया था। वह अपने हृदय की ग्लानि भूल जाना चाहता था।

अमर वहाँ से जाने लगा तो दौड़कर शरद ने उसको पकड़ लिया।

"कहाँ जाते हो ?..." गरजकर बोला वह—"लुटेरे, मुझे लूटकर, तुम भी लुटोगे.. बचने नहीं पाओगे...पहले अपना इतिहास तो सुन लो...."

"सुनाओ !..." बोला अमर।

"तुम...तुम ..."

कहने लगा शरद तो भयभीत होकर रजनी ने अपने कान बन्द कर लिये। शरद चीखता रहा—"तुम मेरे भाई नहीं हो...तुम अनाथ हो अमर !..."

"शरद भाई !..." अमर का मस्तिष्क उड़ चला था।

"तुम इस घर के कोई भी नहीं हो...नदी में तुम्हारी लाश बही जा रही थी अमर, मैंने तुम्हें बचाया था !...."

"ओह, यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?..."

अमर ने अपना मस्तक पकड़ लिया था और उसे जोर से दाबे हुए था। उसके मस्तिष्क की रग-रग टूटती चली जा रही थी।

"तुम्हारी स्मृति नष्ट हो गई है...तुम भूल गये हो कि तुम कौन थे, कहाँ से आये थे !...."

"चुप रहो...चुप रहो....मुझे सोचने दो....मैं इस घर का कोई नहीं हूँ...कोई नहीं हूँ मैं...तब कौन हूँ ? क्या हूँ मैं ?...."

आवेश में आकर अमर ने अपना सर पीट लिया।

वह विक्षिप्त-सा हो गया।

"तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है !" शरद बोला—"मैं तुम्हें इस घर में रहने नहीं दूँगा !..."

"मैं चला जाऊँगा...मैं जाऊँगा...और ठोकरें खाता हुआ पत्थरों से पूछूँगा कि मैं कौन हूँ ?...मैं कौन हूँ ?..."

पागल-सा अमर भाग चला दरवाजे के बाहर।

"रोक लो स्वामी ! उसे रोक लो....अमर !..."

परन्तु अमर के पीछे जाती हुई रजनी को शरद ने पकड़कर रोक रखा।

"मुझे छोड़ दो !"

"छोड़ दूँ तुझे ?....कुलटा कहीं की....शर्म नहीं आती ?"

"शर्म तुम्हें क्यों नहीं आती, जो घर का पकवान छोड़कर गली-गली कुत्तों की तरह मारे-मारे फिरते हो...स्त्री का मोह तुम क्या जानो ?..." इस समय रजनी के मुख से उसके अन्तर का विद्रोह बोल रहा था।

शरद कुर्सी पर चुपचाप बैठकर अपने को संयत करने लगा। यह अच्छा था कि इस समय उसके पिता बाहर गये हुए थे, नहीं तो वह इतना मनमाना कर भी नहीं सकता था।

× × ×

"शरद बाबू !...." दरवाजे पर से आवाज आई।

चौंककर शरद ने सर उठाया। देखा, नागिन खड़ी थी बीच दरवाजे में।

"क्या है ? क्यों आई हो तुम यहाँ..."

"अमर बाबू कहाँ है ?"

"तुमसे मतलब ?...तुम उनकी कौन हो ?...."

"मैं उनकी पत्नी हूँ..."

"पत्नी ?....वेश्या और पत्नी ।" अट्टहास कर उठा शरद।

"मुझे बताइये, वे कहाँ हैं ?" नगीना ने पूछा।

"उसे मैंने निकाल दिया...सुना तुमने ?...वह पागल सड़क पर मारा-मारा फिरता होगा....जाओ, उसे खोजो..."

"शरद बाबू !..."

"निकल जाओ यहाँ से...." गरजा शरद।

और नगीना घूम पड़ी। उसकी आँखों से आँसू चू पड़े।

उसकी नाव किनारे से टकराकर फिर मझधार की ओर बही जा रही थी।

क्या करे वह—क्या न करे ?

• •

शहर में एक अनोखा पागल है ! फटे-चीथड़े पहने हुए वह चारों ओर घूमा करता है। चिल्लाता है—"मैं कौन हूँ....कोई मुझे बताओ कि मैं कौन हूँ..."

लोग उसका अर्थ न समझ कर हँस देते हैं और बच्चे तो उसके इस पागलपन का पुरस्कार ईंट तथा पत्थरों द्वारा देते हैं।

भोले बालकों के इस कार्य पर वह पागल रो देता है, हँसता नहीं कभी वह। किसी ने उसे हँसते नहीं देखा।

वह किसी से भिक्षा नहीं लेता, कुछ माँगता भी नहीं।

कभी तपती जमीन पर, धूप के नीचे लेट जाता है वह और तमतमाये हुए सूर्य की ओर देखकर पूछता है—"बोलो, मैं कौन हूँ ?"

कभी खिली चाँदनी की शीतल छाया में नदी के किनारे बैठा हुआ वह चिल्ला उठता है—"बोलो, मैं कौन हूँ ?..."

सूखे खड़े हुए वृक्षों से लिपट जाता वह और पूछता—

हरी-हरी लताओं का आलिंगन करके पूछता।

दिन-रात पूछता रहता वह—"बोलो, मैं कौन हूँ ?"

मगर कौन उसे बताता ? कौन जानता था कि वह कौन है ?

किसी ओर से उत्तर न पाकर वह भूला हुआ पागल, आत्म-विस्मृत प्राणी-क्रोध से, ग्लानि से विह्वल हो उठता—अपना सर पीटने लगता—अपनी छाती कूटने लगता।

इसी प्रकार उस अभागे के दिन बीत रहे थे—कभी सिसकते कभी रोते तो कभी टहलते।

उसकी व्यथा का कहीं अन्त न था।

उत्पीड़न दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था।

और धूप, वर्षा एवं शीत से लड़ता हुआ वह पागल उत्तरोत्तर मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा था।

उधर नगीना—शहर की नागिन, शहर की शमा भी कम बेचैन नहीं थी।

उसका कोठा आजकल दर्शकों के लिए आकाश बन गया था, जहाँ तक पहुँचना तो दूर, उसे छू भी सकना असम्भव था।

पीड़ित थी नगीना और उस पीड़ा को, तमाशाइयों के साथ हँस-बोलकर बढ़ाना नहीं चाहती थी वह।

सो उसने अपना घृणित व्यापार बन्द कर दिया था।

दिन-दिन भर तांगेपर चढ़ी हुई वह शहर का चक्कर लगाया करती थी कि शायद कहीं मिल जाय उसका भूला-भटका अमर।

मगर रोज वह लौटती और रोज ही अमर उसकी पहुँच से बाहर रहता।

× × ×

शाम के समय नदी का वक्षस्थल स्थिर हो उठा था।

लोल-लहरों का चांचल्य विलीन हो गया था और सपाट छाती पर सूर्य की अन्तिम किरणें खेल रही थीं।

बड़ा ही मनोहर दृश्य था वह ! सैकड़ों की संख्या में दर्शक वहाँ उपस्थित थे, उस दृश्य से नेत्र-रंजन करने के लिए।

तांगे पर अमर को खोजती हुई निराश नगीना भी पहुँच गई उस स्थान पर और अपने असंयत हृदय को क्षणिक भुलावा देने के लिए तांगे पर से उतर पड़ी।

लोगों ने उसे देखा और पहचाना भी। और उस नागिन की मलीन मुखाकृति एवं परिवर्तित वेश-भूषा देखकर उन्हें आश्चर्य भी हुआ।

नगीना उस समय एक काली साड़ी पहने हुए थी, जो उसके गोरे बदन पर ऐसी खिल रही थी, जैसे चाँद के शरीर पर श्याम बादल का झीना टुकड़ा। हाथों में सोने की दो-दो चूड़ियाँ थीं, कानों में छोटे-छोटे बुन्दे, नाक में नगदार कील और गले में सोने की पतली-सी जंजीर। नाक की बड़ी-सी नथ उसने उतार फेंकी थी, जिसे देखकर कुछ जानकार व्यक्ति आपस में काना-फूसी रहे थे।

मगर नगीना को किसी की ओर देखने तक का अवकाश न था—वह देखना भी नहीं चाहती थी। अमर से कम अशान्ति उसके अन्तराल में नहीं थी। वह एकटक डूबते हुए सूर्य को देख रही था, जैसे अस्त होते हुए जीवन की लालिमा देखकर वह मूक बन गई हो।

उसी समय कोई पागल चिल्ला उठा—"बोलो!...लोगों मुझे बताओ...बताओ कि मैं कौन हूँ, किस दुनिया का रहनेवाला हूँ।"

लोगों के ठहाका मारकर हँसने का शब्द सुनाई पड़ा।

परन्तु वह स्वर सुनते ही नगीना विस्मय से भरकर चौंक उठी—सामने देखा तो उसी विचित्र पागल पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह चिल्ला उठी—"अमर !" और गिरती-पड़ती दौड़ी उस पागल की ओर।

और उसे देखते ही वह पागल सामने की ओर भाग चला, चिल्लाता हुआ—"मुझे मत पकड़ो...मैं पागल हूँ....पागल हूँ ..."

तीर की तरह वह पागल भागा जा रहा था कि नगीना के लिए उसे पकड़ पाना असम्भव था। सो एक तांगे पर चढ़कर

उसने उसका पीछा किया। घोड़े और पागल में दौड़ने की बाजी लग गई।

नगीना पुकारती रही—"अमर, रुक जाओ अमर!..."

मगर पागल बिना सुने हुए भागता गया, दौड़ता गया—तीर की तरह, आंधी की तरह, तूफान की तरह।

अन्त में दिन भर में चार सेर चना खाने वाले घोड़े ने, चार दिन से भूखे रहने वाले उस पागल पर विजय पाई—

तब, जब कि भागते-भागते वह पागल थककर, चूर होकर, गिर पड़ा बीच सड़क पर और बेहोश जैसा पड़ रहा।

गिरने से मस्तक की नसें खुल गईं और खून बह चला।

सड़क की धूल युग-युग की प्यास लिये उस लालिमा से लिपट कर रो पड़ी।

तांगा रुका और नगीना उतर कर उस पागल की ओर झपटी।

पागल की चेतना लुप्त नहीं हुई थी।

वह चिल्लाया—"मुझे जाने दो...छोड़ दो..."

नगीना ने उसका हाथ पकड़ कर उठाया।

बोली—"अमर बाबू!"

"मुझे अमर मत कहो....मैं अमर नहीं हूँ...मैं शरद का भाई नही हूँ..."

"अपने को संभालो अमर बाबू!....आओ मेरे साथ..." और उस पागल का हाथ पकड़कर नगीना खींच ले चली तांगे की ओर।

तांगे पर बैठ गये दोनों तो घोड़ा दौड़ चला।

अपने घर पहुँच कर नगीना ने अमर को कमरे में ला बिठाया और उसके सर से खून धोकर पट्टी बांध दी।

चोट बहुत हल्की थी। विक्षिप्त अमर चुपचाप पलंग पर बैठा रहा।

"अमर!..." नगीना ने पुकारा।

"मुझे अमर न कहो नगीना!..." विह्वल स्वर में बोला

अमर—"मैं अमर नहीं हूँ...यह नाम सुनकर मेरे कलेजे में आग लग जाती है...मस्तिष्क में भूकम्प-सा आ जाता है।"

"अमर नहीं हो तुम, तब कौन हो!" पूछा नगीना ने।

"तुम मेरा मस्तक तोड़ दो नगीना! तब पूछो कि मैं कौन हूँ....मेरा कलेजा चीर दो, तब देखो कि मैं कौन हूँ..."

"तुम कौन हो यह मैं जानती हूँ?"

"जानती हो?..." आश्चर्य में भरकर बोला वह।

"हाँ!..."

"बताओ मुझे कि मैं कौन हूँ? इतनी कृपा मुझ पर कर दो नगीना!...."

"तुम उदय हो!..." बोली नगीना।

"उदय!....यह नाम तो एकदम नया है मेरे लिए...ऐसा परिचय दो कि मुझे भी याद पड़ जाय..."

"उदय का नाम तुम भूल गये?..." पूछा नगीना ने।

"हाँ, मुझे याद नहीं!.." अमर ने कहा।

"घबराओ नहीं अमर!...तुम्हें सब कुछ याद पड़ जायगा तुम धीरज रखो...मैं तुम्हारा ईलाज कराऊँगी!...."

"मगर कब?..."

"जब तुम अपनी यह शिथिलता दूर कर लोगे....उठो, तुम्हें स्नान करा दूं!..."

कहकर नगीना अमर को नल के नीचे ले गई।

उसके चीथड़े उतारकर उसने साबुन से मल-मलकर नहलाया फिर तौलिये से बदन पोंछकर अच्छे अच्छे कपड़े पहनने को दिये।

नगीना का अपनत्व पाकर अमर का पागलपन दूर हो गया। उसे थोड़ी शान्ति मिली।

रात में नगीना ने अमर को अच्छा-अच्छा खाना खिलाया।

तत्पश्चात् दोनों एक ही पलंग पर लेटकर धीरे-धीरे बातें करने लगे।

"अमर !"

"अच्छा तो अमर ही कहना चाहती हो तुम मुझे...कह लो अमर ही....कहो, क्या कहती हो नगीना !..."

"शरद बाबू के यहाँ से निकल कर तुम मेरे यहाँ क्यों नहीं आये ?..." पूछा नगीना ने ।

"मैं तुम्हारी सूरत, तुम्हारा नाम और घर, सब कुछ भूल गया था नगीना !...आज तुम्हें देखा तो तुम भी याद पड़ी और तुम्हारा नाम भी !...."

"खैर, याद तो आई, वही बहुत है मेरे लिए !..." कहा नगीना ने ।

इसके बाद दोनों सो रहे ।

अमर अब वहीं रहने लगा ।

धीरे-धीरे उसका अशान्त मस्तिष्क ठिकाने आने लगा । नगीना जैसी सेविका पाकर वह अत्यन्त सन्तुष्ट था ।

उसका स्वास्थ्य जो नष्ट हो गया था, अब धीरे-धीरे ठीक होने लगा ।

नगीना भी आजकल पवित्र जीवन व्यतीत कर रही थी ।

और पेशा तो वह बहुत पहले से ही छोड़ चुकी थी ।

अब केवल अमर से ही हँसती-बोलती वह परम सन्तोष पा लेती थी । वह और कुछ नहीं चाहती थी ।

चाहती थी कि अमर चाहे चैतन्य रहे अथवा अचैतन्य; सदैव उसके पास रहे । वह उसकी सेवा करे, उसे खिलाये-पिलाये, नहलाये-धुलाये और अबोध बालक की तरह उसकी तीमारदारी करे । इसी में उसे आनन्द मिलेगा ।

इस समय वह एक बाजारू वेश्या नहीं थी, एक कुशल गृहिणी थी ।

उस दिन शाम को अमर ने कहा—"मै नदी के तीर पर जा रहा हूँ घूमने....चलोगी तुम भी ?"

"मुझे खाना पकाना है ।" बोली नगीना—"बताओ, कैसे जा सकती हूं मैं ।"

"तो तुम बैठो...मैं अकेला ही जाता हूं ।"

"और कहीं घर का पता ही भूल बैठे तो ?"

"हाँ, यह हो सकता है ।..." अमर बोला ।

"अच्छा ठहरो ? मैं यहीं से एक ताँगा किये देती हूं, जो तुम्हें ले भी जायगा और यहाँ तक पहुँचा भी देगा..."

"अच्छा रहेगा..." अमर ने कहा ।

नगीना ने ताँगा मँगवाया और ताँगे वाले से सब कुछ बता दिया ।

अमर ताँगे पर चढ़कर नदी तट पर आया और बैठकर न जाने क्या सोचने में निमग्न हो गया ।

"कुँवर बेटा ! .." एकाएक किसी ने सामने से पुकारा ।

और जब तक अमर ने अपना सर उठाया, तब तक पुकारने वाले ने नीचे बैठकर उसके पैर पकड़ लिये ।

अमर चौंक पड़ा ।

उसने देखा—साठ बरस के लगभग का एक बुड्ढ़ा, देहाती वेष-भूषा में, उसका पैर पकड़ कर बैठा है और कह रहा है—"तुम चले आये कुंवर बेटा ? और हम दुखियों की सुध ही भूल गये ?..."

अमर की समझ में कुछ भी नहीं आया ।

उसने समझा बुड्ढा-पागल है ।

उसने अपना पैर तेजी से खींच लिया कि पैर पकड़कर बैठा हुआ वह बूढ़ा, मुँह के बल जमीन पर गिरते-गिरते बचा ।

बोला अमर—"जाओ उधर माँगो, मेरे पास कुछ नहीं है ।"

"मैं भीख नहीं माँगता कुँवर बेटा !...तुम्हें लेने आया हूं ।"

"मुझे लेने ?..." अमर ने कहा—"पागल तो नहीं हो गया है ?.... मेरा नाम अमर है, कुँवर नहीं...."

अपने सुफल काका को धोखा मत दो कुँवर बेटा, नहीं तो सच कहता हूँ जहर पीकर लेट रहूँगा....'' बूढ़ा बोला—''तुम्हारे बिना ताऊ बेचैन हैं और तुम्हारी ताई तुम्हारा नाम जपते-जपते रो-कलप कर मर गई....और बेचारी नीरजा बहू भी जीते जी मुर्दा पड़ी है....''

कहते-कहते बुड्ढा रोने लगा।

उसके आँसू देखकर अमर समझ गया कि यह पागल नहीं है। किसी दूसरे के धोखे में उसने उसे पकड़ लिया है।

वह बोला—''मैं वह नहीं हूँ, जिसे तुम समझे हो...जाकर उसकी तलाश करो और मेरा पिण्ड छोड़ो....''

अमर उठने लगा तो बूढ़ा उसके पैरों से लटक गया।

'माफ करो कुंवर बेटा !...घर लौट चलो...''

''छोड़ दो मुझे !'' एकाएक अमर का मस्तिष्क उत्तेजना से भर गया। और वह उस दीन बूढ़े को निर्दयतापूर्वक ढकेल कर ताँगे पर आ चढ़ा।

ताँगा चल पड़ा और वह बूढ़ा आँख से आँसू पोंछता हुआ खड़ा ही रहा।

× × ×

''आँसू पोंछ लो सुफल !...'' ताऊ बोले—''तुम्हें रोता देखकर, मेरी भी तबीयत बेचैन हो उठी है....''

''क्या बताऊँ सरकार ! ...'' बूढ़ा सुफल आंसू पोंछता हुआ बोला—''उसने मुझे पहचाना ही नहीं....मेरे कुंवर बेटा ने मुझे ठोकरें मारी....''

''वह तुमसे मिला था सुफल !...''

''हाँ राजा ! मिला था...उसकी खोज में दर-दर भटकता मैं इलाहाबाद गया सो मिल गया गङ्गा तट पर....मैंने रोकर उसके पैर पकड़ लिये और उसने तमक कर मुझे लात मार दी बड़े ठाकुर! चला गया वह निष्ठुर, मगर मेरी बूढ़ी छाती में उस लात ने

ममता की आग भड़का दी है:...'' फिर रोने लगा सुफल।

बूढ़े नौकर के आँसु देखकर, ताऊ के भी आँसू मचल पड़े।

गाल भींग गये, दाढ़ी तर हो उठी परन्तु मुख से आह नहीं निकली।

बूढ़े ताऊ का कठोर न्याय, पश्चात्ताप के आँसू बनकर पिघल पड़ा।

''रहने दो सुफल!...'' बोले ताऊ—''वह जहाँ है, उसे वहीं रहने दो....हम लोग किसी न किसी तरह अपने दिन बिता ही ले जायेंगे।''

''नहीं बड़े राजा!...''सुफल ने कहा—''मेरे रहते ऐसा नहीं होगा....तुम्हारा नमक खाया है तो तुम्हें रोते न देख सकूँगा... बेचारी नीरजा क्या यों ही तड़पते-तड़पते अपनी जान दे देगी?''

''नीरजा के आँसू मुझसे भी नहीं देखे जाते सुफल?...'' ताऊ ने कहा।

''मैं नीरजा को ले जाऊँगा सरकार! ..'' एकाएक सुफल बोला।

''कहाँ ले जाओगे सुफल?...'' पूछा ताऊ ने।

''इलाहाबाद!...''

''क्या करोगे ले जाकर?''

''नीरजा को देखकर कुँवर विचलित हो जायगा सरकार!... और नीरजा उसे बाँध लायेगी यहाँ तक...''

''तब भी तो नीरजा यहीं थी सुफल!'' बोले ताऊ—''मगर उस समय वह कुँवर को बाँध नहीं सकी और वह पथ-भ्रष्ट हो गया!...''

''तब की बात जाने दो ताऊ! अब नीरजा बिटिया ने, रोकर जो अपनी हालत बना ली है, उसे देखकर पत्थर भी बह चलेगा बड़े राजा! और मैं जानता हूँ कि कुँवर बेटा पत्थर नहीं हैं...''

''अगर तुम नीरजा को ले जाना चाहो तो ले जा सकते

हो ..." ताऊ ने कहा।

"तुम चाहे कहते या न कहते, मैं तो नीरजा को ले ही जाता ठाकुर !..." कहकर सुफल जाने लगा।

"तो कब जाओगे सुफल ?..." ताऊ ने पूछा।

"कल सबेरे ही चल दूंगा सरकार !..." चला गया सुफल।

सुफल के जाने के बाद ताऊ उठे और जनानखाने में आये।

देखा रसोई घर में बैठी हुई नीरजा आटा गूंथ रही थी और रह-रहकर रोती भी जा रही थी।

ताऊ का हृदय उमड़ आया, बोले—"यह आटा अपने आंसू से गूंथ रही है क्या बेटी !..."

सुनकर चौंक पड़ी नीरजा। झटपट आंसू पोंछकर उसने बनावटी मुस्कान के साथ देखा ताऊ की ओर।

"यह हँसी मुझे मत दिखा....इसके पीछे जो आंसुओं का सागर छिपा है, उसे जानता हूं मैं ..."

"ताऊ !...." कुछ कहना चाहा नीरजा ने मगर कह नहीं पाई।

"झटपट भोजन तैयार कर ले बेटी ! आज आखिरी बार तेरे हाथ का परसा खा लूं !...." बोले ताऊ।

"क्यों ताऊ !...बात क्या है ?..."

"आज सुफल इलाहाबाद से आया है। कहता था कि उसने कुंवर को इलाहाबाद में देखा है ..."

नीरजा की समझ में नहीं आया कि वह हँसे या रोये।

"हां !..." ताऊ ने कहा—"मगर उसने सुफल को लात मार दी ?..."

"ओह !" नीरजा ने अपना मस्तक पकड़ लिया।

सुफल जैसे स्वामिभक्त बूढ़े नौकर को भी कोई पैर से ठुकरा सकता है, यह सुनने की आशा उसने कभी नहीं की थी।

"कल फिर सुफल जायगा बेटी ! और तुम्हें भी ले जायगा

साथ में !..."

"किसलिए ताऊ ?"

"कुँवर को दिखाने के लिए !..."

"क्या देखेंगे वे ?...." पूछा नीरजा ने ।

"देखेगा कि पतझड़ के पहले ही गुलाब की कली मुर्झा गई है....देखेगा कि तूफान के झोंके के बिना ही सागर में कितनी हलचल मच गई है !..." ताऊ ने उत्तर दिया ।

"मैं नहीं जाऊँगी ताऊ !..." दृढ़स्वर में कहा नीरजा ने ।

"क्यों ?...." ताऊ को उसका स्वर अत्यन्त करुण एवं भयानक लगा । वे आश्चर्य से भरकर रह गये ।

"मेरे प्रेम में शक्ति होगी तो मैं उन्हें यहीं बुला लूँगी ताऊ!.... उन्हें आना पड़ेगा...आना ही पड़ेगा उन्हें !..."

रो पड़ी नीरजा । आँसुओं की नदी बह चली, जिसे रोकने का प्रयत्न नहीं किया उसने । बहने दिया करुणा की उस धार को, अबाध गति से ।

"पगली कहीं की !..." ताऊ बैठ गये और उसके सर पर ममता का हाथ फेरने लगे—"इस तरह जलने से तो आग में कूदकर जलना अच्छा है ..कब तक रोती रहेगी तू ?...कब तक दुःख देती रहेगी मुझे...."

"तुम्हें दुख होता है ताऊ !...."

"कमल की पंखड़ी पर पानी की बूँदें अच्छी लगती है बेटी ! मगर उन पर आँसू की बूँदें देखकर कौन व्यथित न होगा ?..."

"मैं जाऊँगी ताऊ !...तुम्हें दुख होता है तो मैं सुफल काका के साथ उस निर्मोही के पास जाऊंगी !"

"बिटिया !..." हर्ष से बोले ताऊ ।

दूसरे ही दिन नीरजा, सुफल के साथ इलाहाबाद के लिए चल पड़ी । वहाँ पहुंचकर धर्मशाला में डेरा डाल दिया दोनों ने

और उदय की खोज में इधर-उधर भटकने लगे।

× × ×

"चलो उठो !...." नगीना ने कहा।

"कहाँ की तैयारी है !..." पूछा अमर ने।

"डाक्टर मुखर्जी के यहाँ !...उन्हीं से तुम्हारा ईलाज कराऊंगी। डाक्टर मुखर्जी इस शहर के सबसे बड़े डाक्टर हैं..."

"चलो...." कहकर अमर उठा और नगीना के साथ तांगे पर आ बैठा।

डाक्टर मुखर्जी ने अमर को देखा। उसकी परीक्षा की और तब नगीना को दूसरे कमरे में ले गये।

बोले—"आप सभी बातें विस्तार के साथ मुझे बताइये..."

और नगीना ने सब कुछ बता दिया।

"आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं एम्नीशिया का ईलाज करता हूं ?...." डाक्टर ने पूछा।

"मुझे मालूम नहीं था...आपकी शोहरत मुझे यहाँ तक खींच लाई..." बोली नगीना।

"मुझे अफसोस है कि मैं इस रोग का विशेषज्ञ नहीं...मैं कुछ नहीं कर सकता..." डाक्टर ने नम्र स्वर में कहा।

"तो ?..." हताशवाणी में नगीना ने पूछा।

"कलकत्ते में एक अंग्रेज डाक्टर मेरा मित्र है....वह इस बीमारी के ईलाज में पूरा अनुभवी है....इंगलैण्ड में भी उसका बड़ा नाम है...मैं उसे यहाँ बुला सकता हूँ मगर खर्च बहुत ज्यादा पड़ जायगा...."

"कितना खर्च पड़ेगा डाक्टर साहब !..." नगीना ने पूछा।

'दवा और उसकी फीस, कुल मिलाकर दस हजार से कम नहीं....आपरेशन के लिए मैं अपनी डिस्पेन्सरी में मुफ्त प्रबन्ध कर दूंगा..." बोला डाक्टर।

नगीना चुप रह गई। वह जानती थी कि इस समय कुल

मिलाकर उसके पास दो हजार रुपयों से अधिक नहीं हैं।

यद्यपि पहले वह सैकड़ों रुपये रोज पैदा कर लेती थी परन्तु अधिकांश तो रहन-सहन में ही खर्च हो जाता था।

जो कुछ बचा भी था वह इधर महीनों से खर्च हो रहा था और आय का साधन कुछ था नहीं।

तो क्या उसका अमर यों ही पागल बना रहेगा?

क्या उदय बनकर वह कभी उसे पहचानेगा नहीं?

नहीं!—वह अपने गहने, अपना मकान, अपना सब कुछ बेंचकर अमर का ईलाज करायेगी।

दृढ़ निश्चय से नगीना का वैकल्य कुछ दूर हुआ।

'आप उन्हें जल्द बुलाइये डाक्टर साहब!...मैं तैयार हूं..." नगीना बोली।

"बहुत अच्छा, मैं आज ही तार दिये देता हूं...." डाक्टर ने कहा।

नगीना दूसरे कमरे में, अमर के पास आई।

"क्या हुआ?" पूछा अमर ने।

"सब ठीक हो गया....अगले सप्ताह आपरेशन होगा!...." नगीना ने कहा।

"आपरेशन!..." चौंककर बोला अमर—"किस चीज का आपरेशन?..."

"तुम्हारे मस्तिष्क का ..."

'चलो, बेचारी खोपड़ी को भी यह दिन देखना था।.." कहकर अमर हँस पड़ा।

नगीना, डाक्टर को एक बार पुनः हिदायत देकर अमर के साथ चल पड़ी।

घर आकर अमर ने नगीना से पूछा—"कौन आपरेशन करेगा नगीना!"

"कलकत्ते से एक अंग्रेज डाक्टर आयेगा..."

"अंग्रेज डाक्टर !...कितना रुपया लगेगा ?..."

"दस हजार !..." ठण्डी सांस लेकर बोली नगीना।

"दस हजार रुपये तुम्हारे पास हैं नगीना !"

"कहीं न कहीं से प्रबन्ध कर लूंगी.. "

उसी दिन शाम को—

नगीना अपने सभी गहने एक सोनार को दिखा रही थी।

अमर ने देखा तो सोचा शायद कोई नया गहना बनवाना चाहती है नगीना !

सोनार चला गया तो अमर ने पूछा—"कोई नई चीज बनवानी है क्या ?"

"नहीं तो...."

"तो ?...."

"इन्हें बेचने का इरादा है...." बोली नगीना।

"क्यों ?...इन्हें बेचना क्यों चाहती हो तुम ?" नगीना के इस निश्चय से अमर को आश्चर्य हो रहा था।

"गहने और मकान बेचकर ही तो दस हजार इकट्ठे होंगे..." नगीना बोली, जैसे वह रो देना चाहती हो।

"नगीना !..." कुछ तेज आवाज में पुकारा अमर ने।

"मेरे जीवन !..." कहकर नगीना अमर के शरीर से आ लिपटी।

"मैं तुम्हें ऐसा न करने दूंगा नगीना !..." दृढ़ स्वर में अमर ने कहा।

"मेरे अमर ! ऐसा न कहो तुम...मैं भिखारिन बनकर भी तुम्हें स्वस्थ देखना चाहती हूँ... तुम मुझे पहचानो, यही मेरी आकांक्षा है...."

"नगीना ! मैं तुम्हें पहचानता तो हूं... फिर व्यर्थ में क्यों परेशान हो रही हो ?..."

"मैं जानती हूँ और ईश्वर जानता है कि तुम मुझे तनिक भी

नहीं पहचानते अमर ! तुम स्वयं अपने को ही नहीं जान सकते तो मुझे क्या पहचानोगे ?...." नगीना ने आर्द्र स्वर में कहा।

"मैं कुछ भी नहीं जानता !..." बोला अमर—"अगर तुम्हारे पास दस हजार नगद हों तो लगाओ, नहीं तो मैं तुम्हें उजाड़ कर अपना फायदा नहीं कर सकता..."

"हम और तुम अलग-अलग नहीं हैं अमर ! हमारा और तुम्हारा अस्तित्व एक है....हम तुम कभी विलग नहीं हो सकते...."

"चाहे जो हो नगीना ! मैं तुम्हें ऐसा नहीं करने दूंगा... अगर तुमने अपनी कोई चीज बेची तो मैं रात में यहाँ से निकल कर कहीं चल दूंगा..."

"मैं तुम्हें रात भर बाँध के रखूंगी अमर!.... भाग कैसे सकोगे तुम ?...."

"तो निश्चय जानो कि मैं तुम्हारे विष का डिब्बा खोलकर गटक जाऊँगा..."

"अमर !" चीख उठी नगीना—"मेरे अमर ! ऐसा मत करना !"

"तो मैं जैसा कहता हूँ, वैसा ही करना पड़ेगा तुम्हें..."

"मैं करूंगी, जैसा तुम कहोगे, वैसा ही करूंगी ...." सिसकती हुई नगीना उठकर दूसरे कमरे में चली गई।

इस समय उसका हृदय हाहाकार कर रहा था।

अमर की जिद से उसके सारे मन्सूबे धूल में मिल गये थे।

अमर को स्वस्थ देखने का स्वप्न, दिन का प्रखर प्रकाश देख कर जैसे विलीन हो गया था।

अब वह क्या करे ? दस हजार रुपये कहाँ से लाये वह ? रूप के बाजार में बैठना उसने छोड़ ही दिया है। अब यदि रुपये एकत्रित करने के लिए वह फिर से अपना घृणित व्यापार प्रारम्भ करती है तो लोग हँसेंगे—और विलासी लोगों के सामने

अपने को उपहास का विषय बनाना वह चाहती नहीं। तो फिर कहाँ से आयेंगे रुपये ?

उसके पुराने प्रेमी बिना कुछ लिये उतनी बड़ी रकम कभी दे नहीं सकेंगे।

तो ?

× × ×

तो क्या करे शरद, यही उसकी समझ में नहीं आता।

आज कल शरद एक दूसरा ही आदमी हो गया है। रूप के बाजार में जाना उसने छोड़ दिया है। दिन रात अब घर पर ही व्यतीत होते हैं।

मगर तब भी शरद के हृदय को शान्ति नहीं है।

शराब और वेश्या का साथ छोड़ कर उसने आशा की थी कि उसकी वेदना दूर भाग जायगी और वह शान्ति की साँस ले सकेगा।

परन्तु उसकी आशा दिल के दावानल के सामने जल-भुन कर भस्म हो गई।

अमर को उसने घर से निकाल दिया था और अपनी सुशीला पत्नी के कलेजे पर ठोकर मारी थी।

इन्हीं दुर्दमनीय विचारों की शृंखला ने उसे बाँध रखा है और वह उस बन्धन में पड़कर दिन-रात छटपटाता रहता है।

दिल की एक-एक धड़कन पर मालूम होता है कि कोई हथौड़े से उसका कलेजा तोड़ रहा है।

शरीर के एक-एक कम्पन पर लगता है जैसे उसके तार-तार टूट चले हों।

रजनी, वह ममतामयी नारी, पहले की ही तरह सरल एवं सजग है।

वेश्याओं की गोद से निकले हुये अपने पति की वह पूर्ववत् सेवा करती है परन्तु उसकी जबान से शब्द नहीं निकलते।

जैसे शरद की ठोकर ने उसकी जबान ऐंठ दी हो।

जहाँ तक सेवा का प्रश्न है, वह कभी पीछे नहीं हटती परन्तु दुखित एवं विकल शरद रजनी से जो प्रेम, जो मधुर-स्पर्श चाहता है, वह उसे प्राप्त नहीं हो पाता।

और इसीलिये उनकी अशान्ति बढ़ चली है।

एक ही घर में रहते हुए वे दोनों पति-पत्नी, अब पहले से भी दूर जा पड़े हैं।

शरद छटपटाता है और चाहता है कि कतरा कर जाती हुई, रजनी का सौन्दर्ययुक्त शरीर खींच कर अपने कलेजे में दाब ले मगर हो नहीं पाता यह सब उससे।

रजनी को सामने देखकर वह जाने कैसा शिथिल-सा हो पड़ता है। दृष्टि जमीन का सीना छेदने लगती है और जबान थक कर चूर-चूर हो गई रहती है।

अब शरद सुधर गया है तो उसे मालूम होता है कि जो सौन्दर्य एवं जो आकर्षण रजनी में है, वह किसी में भी नहीं, कहीं भी नहीं।

मगर उसके सौंदर्य से प्रभावित होकर, उसके आकर्षण से खिंच कर शरद को जो बेचैनी मिली है, वह असह्य है उसके लिए।

कुर्सी पर बैठ हुआ शरद सोच रहा था और सोच-सोचकर उद्विग्न हो रहा था। वैकल्य से ऊब कर उसने निश्चय कर लिया था कि आज जब भोजन की थाल लेकर रजनी आयेगी उसके पास तो दौड़कर वह उसे अपने अङ्क में भर लेगा। थाली गिर कर फूट जाय तो फूट जाय परन्तु वह अपने मन की कर ही गुजरेगा आज।

वह उसे कलेजे से लगाकर उसकी माँग का सिन्दूर देखेगा और उस लाल रेखा को चूम-चूम कर गरम कर देगा।

माफी माँगेगा और रो-रोकर कहेगा—"मेरी रानी! अब बदला हो चुका....समझ गया कि जो नारी कमल की कली है, वह

पाषाण भी है। अब इस कठोरता को दूर करो और कमल की कोमलता से मेरी ओर देखो ..देखो..."

"बाबूजी !...." तभी नौकरानी आ पहुँची—"बहू जी ने पूछा है कि खाना भेज दूँ ?..."

"हाँ !..." शरद ने कहा।

नौकरानी चली गई तो वह सजग होकर उठ बैठा और रजनी के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

परन्तु नौकरानी को थाल लिये आते देख कर उसे बड़ी ही व्यथा पहुँची।

यह रजनी भी कितनी कठोर है—आज, जब उसने अपने हृदय में साहस लाकर उससे बोलने का संकल्प किया तो उसने स्वयं आने के बदले नौकरानी को भेज दिया।

और दिन तो वह स्वयं ही थाल लेकर आती थी।

"मत रखो !..." चिल्ला उठा वह—"मैं नहीं खाऊँगा..."

और डरकर नौकरानी थाल लिये भाग गई।

शरद कुर्सी पर हाँफता हुआ बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद स्वयं रजनी थाल लेकर आई। आज उसने अभूतपूर्व शृंगार किया था, जैसे शरद की आवाज वह पहले से ही सुन चुकी हो।

उसे देखकर शरद का निश्चय पुनः जग उठा और उसने चाहा कि लपक कर रजनी को पकड़ ले और....

और ऐन वक्त पर उसका निश्चय धोखा दे गया। वह शिथिल होकर पड़ा ही रह गया कुर्सी पर।

केवल एकटक रजनी के अपूर्व सौन्दर्य को देखता रहा।

रजनी ने थाली मेज पर रखी, इसके बाद शरद की ओर सर घुमा कर देखा उसने और ऐसे भोलेपन से मुस्करा पड़ी कि शरद की सारी शिथिलता दूर भाग गई।

जैसे युगों की भयानक दरार आज समाप्त हो गई हो।

देखकर शरद को आश्चर्य हुआ।

बहुत दिनों की रूठी नारी आज अपने आप ही मुस्करा उठी थी, जैसे शरद को वरदान मिल गया हो!

अप्रसन्न देवी की भौहों पर क्रोध के बदले, अनुराग का नृत्य देखकर शरद उठ खड़ा हुआ।

उसी समय रजनी ने आँख की कमान पर कटाक्ष का ऐसा तीर चढ़ाकर छोड़ा कि शरद सम्हल न सका और दौड़कर रजनी को लपेट लिया अपनी सबल भुजाओं में।

आनन्दोन्माद की पीड़ा से रजनी सीत्कार कर उठी।

आज शरद पागल हो गया था।

उसके अधर रजनी के कपोलों से युद्ध छेड़ बैठे थे और रजनी रह-रह कर "आह-आह" कर रही थी।

"छोड़िये मुझे!..." बोली वह।

"नहीं!...तुम्हें नहीं छोड़ सकता...नहीं छोड़ सकता..."

"खाना खा लीजिये पहले...."

"अब पेट भर गया रजनी!..." प्रेम की बेकली आँखों में भर कर बोला शरद और उसने वह वैकल्य रजनी की आँखों में ढाल दिया।

और रजनी की काली पुतलियाँ, बेहोश-सी होकर दायें-बायें लहराने लगीं --आँख के कोए कोटर में तेजी से तैरने लगे।

"मुझे क्षमा कर दो मेरी रानी!" बोला शरद।

"ऐसा क्यों कहते हैं आप?"

"अब मैं कभी शराब न पिऊँगा...कभी वेश्याओं के यहाँ नहीं जाऊँगा....तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं रजनी! अमर को खोकर मैंने तुम्हें पाया है...मैं एक ओर हर्ष से पागल हो रहा हूँ तो दूसरी ओर दुःख से कातर!" शरद ने कहा।

'आप भोजन कर लीजिये...शरीर आपका कितना सूख गया है आज-कल!..."

"तुम्हारे ही कारण यह सब हुआ है रजनी !"

"मेरे कारण ?..."

"हाँ"

"कैसे?..."

"तुम मुझसे रूठी जो थी !...."

"मैं आपसे भला क्यों रूठती ?..." मुस्कराकर बोली रजनी।

"तब बोलती क्यों नहीं थी !..."

"आप जो मुझसे नहीं बोलते थे !..."

"मैं तो बोलने को तरस रहा था..." बोला शरद।

"और मैं भी ?..." कहकर रजनी ने शरद के सीने पर अपने गाल रख दिये।

पति-पत्नी की जैसे वह सुहागरात थी....

दूसरे दिन प्रातःकाल शरद, चाय पीकर, अपने पिताजी की बाहरी बैठक में आ बैठा।

उसके पिता अब तक बाहर से लौटे न थे, अतः उसी को सारा कार्यभार सम्हालना पड़ रहा था।

बैठक में अकेला ही था वह और समाचार-पत्र पढ़ रहा था।

आज वह प्रसन्न था। उसका वैकल्य रात में ही विलीन हो चुका था।

उसी समय किसी ने बैठक में प्रवेश किया।

शरद पढ़ता ही रहा। सोचा उसने—नौकर होगा।

"शरद बाबू !...." किसी ने मीठी आवाज में पुकारा।

तो स्वर सुनकर चौंक पड़ा शरद !

उसने सर उठाकर देखा—नगीना खड़ी थी उसके सामने। चेहरे पर करुणा के भाव थे। मुखाकृति पर बड़ा-सा शून्य अंकित था।

"नागिन तुम !..." विस्मय से बोल उठा शरद।

"हाँ शरद बाबू !...." नगीना आगे बढ़कर एक कुर्सी पर

आ बैठी।

"तुम्हें यहाँ देखकर आश्चर्य होता है मुझे...."

"...." नगीना कुछ नहीं बोली।

"क्यों आई हो यहाँ ?...." पूछा शरद ने।

"भीख माँगने आई हूँ शरद बाबू !...."

"भीख !...नागिन, यह सेठ की कोठी है...यहाँ क्रय-विक्रय का काम होता है...भीख तो शायद न मिल सकेगी तुम्हें..." बोला शरद।

"भीख न मिल सके तो क्रय-विक्रय ही सही...."

"क्या खरीदोगी तुम ?..."

"खरीदूंगी नहीं शरद बाबू !"

"तो ?...."

"बेचूंगी..." बोली नगीना अपने उमड़ते हुए दिल को रोककर।

"क्या बेचने आई हो ?" शरद ने पूछा।

"अपना शरीर...अपनी जवानी....ले सकोगे शरद बाबू !"

"नागिन !...." चौंक पड़ा शरद।

"शरद बाबू !...." नगीना आर्द्र स्वर में बोली—"तुम बहुत पहले ही मुझे खरीदना चाहते थे मगर मैंने इनकार कर दिया था..."

"और आज तुम स्वयं मेरे पास यह प्रस्ताव लेकर आई हो ?"

"हाँ !...दस हजार रुपये पर मैं एक रात के लिए तैयार हूँ..." नगीना ने कहा।

"दस हजार रुपये पर...और सिर्फ एक रात के लिए...." मुस्करा कर बोला शरद—"नागिन ! तुम्हारी नाक की वह बड़ी-सी नथ भी नहीं है सो कौन देगा तुम्हें एक रात के लिए दस हजार रुपये ?...."

"एक रात के लिए न सही, दस रात के लिए, सौ रात के लिए...या साल दो साल की हर रात के लिए....मैं तुम्हारी हर

शर्तें मानने को तैयार हूँ शरद बाबू !...मुझे दस हजार रुपया चाहिए ही..."

"क्या करोगी दस हजार रुपये।"

"है एक काम..." नगीना ने कहा।

"क्या दस हजार से कम में काम नहीं चल सकता ?..."

"नहीं शरद बाबू !...."

"तुम्हें वह काम तो बताना ही होगा नागिन !...नहीं तो शायद मैं तुम्हारी माँग पर विचार न कर सकूँ..."

"यदि ऐसी बात है तो मैं अवश्य बताऊँगी...."

"तो बताओ..."

"एक पागल के दिमाग का आपरेशन कराना है।"

"कौन है वह पागल !...." पूछा शरद ने।

"अमर !...."

"तो अमर तुम्हारे यहाँ है ?..."

"हाँ।"

"ठीक है !.." कहकर शरद गम्भीर हो गया और सर नीचा करके न जाने क्या सोचने लगा।

थोड़ी देर बाद बोला—"तुम उसके लिए इतना कष्ट क्यों सह रही हो नागिन !..."

"तुम इसे नहीं जान सकते शरद बाबू।..." करुण स्वर में बोली नगीना—"जिसने उसे ठोकरें मारकर निकाल दिया, वह क्या जानेगा ?...जो उसके पीछे पागल है, जिसने उसे अपने दिल में जगह दी है, वही जान सकती है...."

और शरद चुप रहकर सोच रहा था कि क्या कभी एक वेश्या अपने प्रेमी के लिए इतना बड़ा त्याग कर सकती है ?

नगीना के पूर्व इतिहास के विषय में वह सर्वथा अनभिज्ञ था।

वह उसे जन्मजात वेश्या समझ रहा था।

"क्या सोच रहे हो शरद बाबू !...." नगीना ने उसे चुप

देखकर पूछा ।

"कुछ नहीं !..." अचेत-स्वर में धीरे से कह दिया शरद ने ।

"क्या आपको मेरी बातें स्वीकार हैं ?"

"हाँ !...मैं दस हजार का चेक दिये देता हूँ !"

शरद उठा और चेकबुक में से दस हजार का चेक काट दिया ।

नगीना को देकर बोला—"इसे इलाहाबाद बैंक से कैश करा लेना !..."

"धन्यवाद ?...." बोली नगीना–"तो मैं कब तक आऊँ ?"

"किसलिए ?..."

"तुम तो ऐसा पूछते हो शरद बाबू कि..."

आगे नगीना बोल नहीं सकी कुछ....सिसकने लगी !

शरद उठा और उसने नगीना को लाकर अपने पास बिठा लिया ।

बोला—"वह पुराना शरद तो मर चुका और यह जो नया शरद तुम्हारे सामने खड़ा है, वह तुम्हारा दुःख खरीद सकता है, तुम्हारी यौवन नहीं....मेरी विवशता को क्षमा करना तुम...."

"शरद बाबू ?..." हर्ष से चीख-सी पड़ी नगीना–"तुम तो एकदम बदल गये शरद बाबू !..."

"तुम जैसी एक नारी का ही यह प्रभाव है....देखो, स्वयं आ गई वह !..."

उसी समय मुस्कराती हुई रजनी ने वहाँ प्रवेश किया ।

दूर से ही बोली हँसकर–"वाह ! आज तो आपकी बहन जी भी आ गई हैं...तभी तो घुल-मिलकर बातें हो रही थीं !..."

"देखो, तुम तो गाली बकने लगी रजनी !..." बोला शरद— "ये हैं...."

"रहने दीजिये, मैं इन्हें जानती हूं....कैसे आई बहिन नागिन !"

अपने लिए बहन का सम्बोधन सुनकर नगीना का हृदय प्रफुल्लित हो उठा।

"अब ठीक कहा तुमने, ये मेरी बहन नहीं, तुम्हारी बहन हैं रजनी !..." बोला शरद।

"देखिये, आप तो बातें उड़ा देते हैं !...." आँखों की चोट मारकर बोली रजनी।

"तो सुनो, मैं बताता हूँ कि ये क्यों आई हैं ? ..."

शरद ने अमर के विषय में सारी बातें बता दीं।

अमर का पता पाकर रजनी को बेहद खुशी हुई। वह आकर नगीना की बगल में बैठ गई।

बोली—"नागिन बहन ! तुम्हें दस हजार मिल गये न ? ..."

"हाँ !..." बोली नगीना—"मगर आप मुझे नागिन कहकर न पुकारें !"—

"क्यों ?...."

"मेरा असली नाम नगीना है, नागिन नहीं !..."

"ओह !..." हंसकर बोला शरद—"तो तुम जन्म से नागिन नहीं हो ..तब तो तुम्हारा इतिहास भी बड़ा विचित्र होगा नगीना...."

"कुछ पूछिये मत..."

"तो सुना ही डालो आज..." रजनी बोली।

"सुन लो बहन..." नगीना ने कहा।

और सब कुछ सुनकर शरद और रजनी ने ठण्डी साँसें ली, आँखों पर हाथ फेरकर नमी दूर की।

"अब बहुत देर हो चुकी, मुझे चलना चाहिये..." कहकर नगीना उठ पड़ी।

"थोड़ी देर ठहरो नगीना। मैं भी चलता हूँ तुम्हारे साथ..." शरद ने कहा।

"और मैं भी चलूंगी..." बोली रजनी।

शरद की कार पर जब तीनों नगीना के घर पहुँचे तो अमर सोया हुआ था।

पहले अकेली नगीना ही उसके पास गई।

जगाने पर उठ बैठा अमर।

"कहाँ चली गई थी तुम ?..." पूछा उसने।

"रुपयों का प्रबन्ध करने...."

"कर लिया ?..."

'हाँ !...यह देखो...." नगीना ने चेक अमर के हाथों पर रख दिया !

अमर ने चेक देखा।

"तो तुम ये रुपये शरद भाई से माँग लाई हो ?..."

"क्या करती ?...और कोई रास्ता ही नहीं था..." नगीना ने कहा।

"मगर मैं शरद भाई के रुपये अपने ईलाज के लिए कभी स्वीकार नहीं करूँगा...."

"क्यों रे अमर ! क्या बात है ?..." कहता हुआ शरद अन्दर घुस आया।

"शरद भाई !..." तेजी उठ पड़ा अमर।

और शरद ने आगे बढ़कर उसे अपनी छाती से बाँध लिया।

"भाभी को नहीं लाये शरद भाई !" अमर ने पूछा।

"तुम्हारी भाभी खुद आ सकती है अमर !..."

इस आवाज को सुनकर चौंक पड़ा वह और घूमकर देखा तो अपनी रजनी भाभी को दरवाजे पर खड़ी मुस्कुराते पाया।

"भाभी !..." लपक कर अमर ने रजनी का पैर पकड़ लिया--"मुझे क्षमा कर दो भाभी !"

रजनी ने उसे उठाया।

बोली--"तुम तो भाग आये थे अमर ! मगर तुम्हारी भाभी ने तुम्हारा पिण्ड यहाँ भी नहीं छोड़ा....है न ?"

× × ×

इलाहाबाद आकर नीरजा को निराशा ही हाथ लगी।

सुफल और वह भटकते-भटकते परेशान हो गये परन्तु वह नहीं मिल सका जिसकी उन्हें खोज थी।

निराशा के थपेड़े खाकर नीरजा लौट चलने को तत्पर हुई परन्तु सुफल, बालों की सफेदी में साठ वर्ष का अनुभव लादे, इतनी जल्दी निराश होने वाला नहीं था।

वह कहता—"घबड़ाओ मत बिटिया! इसी शहर में कुंवर को देखा था और इसी में से खोज निकालूंगा। थोड़े दिन और रुको..."

तो नीरजा कहती—"ताऊ घबड़ाते होंगे सुफल काका!..."

"रोज तो एक चिट्ठी लिखती है उन्हें—तो घबड़ायेंगे क्यों?"

"चिट्ठी लिखने की बात नहीं है सुफल काका! ताऊ वहाँ अकेले हैं, उनकी देखरेख करने वाला कोई नहीं....तुम भी चले आये हो!..."

"मेरा यहाँ रहना बहुत जरूरी है बिटिया!...मैं कुंवर और नगीना दोनों को पहचानता हूँ...तुमने तो कभी नगीना को देखा तक नहीं। दोनों में से कोई भी मुझे दिखाई पड़ जायगा तो काम हुआ समझो..."

"मैं तो घूमते-घूमते थक गई हूँ काका!"

"तो आज से मैं ही जाया करूँगा बेटी! तुम यहीं, धर्मशाले में आराम करो..."

और उस दिन से अकेला सुफल ही उदय और नगीना की खोज में जाने लगा।

कई दिन तक वृद्ध सुफल निराश ही लौटा।

उस दिन प्रातःकाल से ही गया हुआ सुफल, जब दोपहर तक नहीं लौटा तो धर्मशाले में बैठकर प्रतीक्षा करती हुई नीरजा चिन्तित हो उठी।

मगर कर ही क्या सकती थी वह?

अकेली नीरजा, अनजान जगह में कहाँ जाकर सुफल को खोजती ?

दोपहर को एक बजे आया सुफल।

चेहरा अत्यन्त प्रसन्न था उसका, जैसे बुढ़ापा मिट गया हो।

इस तरह दौड़ता-हाँफता आया, मानो चाँद चुरा के भागा आ रहा हो।

"बिटिया !...बिटिया..." हँसते हुए पुकारा उसने।

"क्या है सुफल काका !...है क्या ?..." पूछा नीरजा ने खड़ी होकर।

"मिल गया बिटिया !...मिल गया वह..."

"कौन ?..."

"वही चाँद का टुकड़ा...हमारी आँखों का तारा...कुँवर का पता मैंने लगा लिया..." बोला सुफल।

"सुफल काका !..." चीखकर बोली नीरजा।

"धीरज रखो बिटिया !...आज मिल लोगी तुम कुँवर से..."

नीरजा तो जैसे अपनी निधि पाकर पागल-सी हो उठी थी।

"तुमने उन्हें देखा था सुफल काका !..."

"नहीं....नगीना को देखा बिटिया ! ...मैंने उसका पीछा किया और जाकर उसका घर देख आया हूँ...वहीं कुँवर भी होगा...जल्दी से तैयार होकर चलो..."

"चलो सुफल काका ! अभी चलती हूँ...तैयारी क्या करना है ?..." कहकर नीरजा उठ खड़ी हुई।

सुफल एक ताँगे पर आया था ! वह ताँगा अब तक खड़ा था। दोनों उसी पर जा बैठे। तेजी के साथ चल पड़ा ताँगा।

"अगर नगीना को छोड़कर उदय घर चलने को तैयार न हुआ, तब क्या होगा बिटिया ! .." सुफल ने पूछा।

"हम नगीना को भी ले चलेंगे काका !...उसे यहाँ असहाय छोड़ देना नहीं चाहती मैं !..." नीरजा बोली।

"तुम अपने पैर, अपने ही हाथों से काटना चाहती हो नीरजा ! क्या एक बार कुँवर को खोकर, दुख से तुम्हारा जी नहीं भरा ?..."

"......."

"तुम चुपचाप रहना बिटिया !..." सुफल ने पुनः कहा—"मैं सब कुछ ठीक कर लूँगा...मैंने तरकीब सोच ली है..."

"क्या तरकीब सोची है तुमने ?"

"कुछ देर बाद खुद जान जाओगी...वह देखो...वही नगीना का घर है..."

ताँगा रुक गया।

आगे-आगे सुफल और पीछे-पीछे नीरजा चढ़ चले नगीना के कोठे पर।

अगर सुफल को मालूम होता कि वह शहर की सबसे नामी वेश्या का मकान है तो कभी नीरजा को वहाँ न लाता।

लोगों ने उसे कोठे पर चढ़ते देखा तो समझ गये कि यह दलाल बुड्ढा कोई नयी बुलबुल फाँस लाया है, जिसकी चहक से शीघ्र ही यह कोठा गूँज उठेगा।

ऊपर चढ़ते ही नगीना की नौकरानी मिली।

सुफल ने पूछा—"नगीना कहाँ है ?..."

"वे अस्पताल गई हैं..." नौकरानी ने कहा।

"क्यों .."

"अमर बाबू बीमार है, अस्पताल में पड़े हैं आज कल..."

"और उदय प्रताप ?..." पूछा सुफल ने।

"यहाँ इस नाम का कोई नहीं रहता...बाईजी बहुत देर से गई हैं, अब आती होंगी...तब तक आप लोग उस कमरे में बैठ जायें..."

सुफल और नीरजा कमरे में आ बैठे।

दोनों आश्चर्यचकित थे, यह सुनकर कि उदय वहाँ नहीं

रहता। तब कहाँ चला गया वह ? क्या नगीना को उसने छोड़ दिया ?

इतने में ही सुफल बोल उठा—"यह नौकरानी कुछ जानती नहीं बेटी ! वह देखो, उस चित्र में नगीना और उदय दोनों खड़े हैं..."

जिस चित्र की ओर सुफल ने इशारा किया था, वह अमर और नगीना का था।

"मगर सुफल काका !..."

"क्या है बिटिया ?...."

"उस नौकरानी ने क्या कहा था।"

"मुझे तो याद नहीं !" बोला सुफल।

"कहा था न कि बाईजी को गये बहुत देर हुई, अब आती ही होंगी...."

"हाँ, कहा तो था..."

"तो क्या यह किसी वेश्या का मकान है सुफल काका !" नीरजा ने पूछा।

"नहीं बिटिया ! शहरों में शायद नौकरानियाँ बहुओं को बाईजी ही कहती हैं...." सुफल ने कहा।

"मैं भी तो शहर की ही हूँ काका !..." बोली नीरजा—"मगर मुझे तो किसी ऐसी चीज की खबर नहीं...."

"तो ? तो हो सकता है कि तुम्हारी ही बात ठीक हो बेटी !.." सुफल ने कहा—"मगर नगीना और वेश्या ! कुछ समझ में नहीं आता...."

"जरा कमरे की सजावट तो देखो काका !...क्या यह किसी बहू-बेटी का कमरा हो सकता है ?...कितने भद्दे चित्र टँगे हैं यहाँ...और वह देखो, उस आलमारी के शीशे के अन्दर घुंघरू, सारंगी और तबला दिखाई पड़ रहे हैं...."

सुफल ने देखा और आश्चर्यचकित होकर रह गया।

उसी समय दरवाजे पर किसी की छाया आ पड़ी और दूसरे ही क्षण नगीना आ गई।

सुफल को देखा उसने तो चौंक पड़ी। पहचानती थी ही वह बूढ़े सुफल को।

फिर उसकी दृष्टि नीरजा पर पड़ी और बड़ी देर तक देखती रही वह उसे।

सुफल भी एकटक नगीना को देख रहा था।

ऐसा अपूर्व सौन्दर्य उसने नगीना के पास कभी न देखा था... अब इतने निकट से देखकर वह कुछ चकित हुए बिना न रहा।

गोरा-गोरा-सा शरीर, अब तो ऐसा खिल उठा था, जैसे चैती गुलाब।

यौवन-भार से बोझिल पलकें, अपने भीतर मदहोशी छिपाए और भी उन्मादकारिणी हो रही थीं।

उज्ज्वल वस्त्र एवं आकर्षक गहनों से उसका सौन्दर्य ऐसा लग रहा था जैसे आसमान पर, दिन के समय ही चाँद उग आया हो।

नीरजा समझ गई थी कि यही नगीना है।

वह भी विस्मय से भर गई थी, एक स्त्री में सौन्दर्य का अगाध सागर एवं मादक अंगों की इतनी सुघरता देखकर।

उदय जो पथ विचलित हुआ, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं—आधा अपराध उदय का था तो आधा ही नगीना के इस सौन्दर्य का।

परन्तु सुफल जानता था कि वह जिस नगीना को जगमगाती हुई अपने सामने देख रहा है, वह मन्दिर की देवदासी नगीना से कितनी भिन्न है—कितना अन्तर है उन दोनों में।

वहाँ ऐसा वातावरण उपस्थित हो गया था कि थोड़ी देर तक बिल्कुल सन्नाटा रहा।

फिर नगीना ने ही पूछा—"कब आये सुफल काका!"

"थोड़ी देर हुए यहाँ आये बिटिया!..."

"गाँव से कब आये हो ?..."

"आज सोलहवाँ दिन है नगीना !—" बोला सुफल।

"हमारा पता कैसे लगा तुम्हें काका !" पूछा नगीना ने।

"पता लगाते-लगाते ही तो अपने बाल सफेद कर लिये बेटी ! फिर भी पता न लगेगा क्या ?..."

"अच्छा, यह तो बताओ सुफल काका कि गाँव का क्या हाल-चाल है ? पुजारी बाबा और ताऊ कैसे हैं और तुम यहाँ एकाएक कैसे आ पहुँचे ?" पूछा नगीना ने।

"सब बताऊँगा नगीना !" ठंढी साँस लेकर बोला सुफल— "तुम मुझे लेकर किसी दूसरे कमरे में चलो।"

नगीना ने आश्चर्य से सुफल की ओर देखा फिर कहा उसने—

"चलो..."

दूसरे कमरे में आकर नगीना पलंग पर बैठी और सुफल एक कुर्सी पर।

इस समय बूढ़े सुफल का चेहरा अत्यन्त गम्भीर हो रहा था।

"पूछो, क्या पूछती हो नगीना ?..."

"गाँव का क्या हाल-चाल है काका..."

"अच्छा नहीं है..." सुफल ने कहा—"कुँवर के चले आने से सारा गाँव वीरान हो गया है...हरियाली पतझड़ बन गई है..."

"पुजारी बाबा कैसे हैं ?"

"तुम्हारे चले आने बाद उन्होंने आत्महत्या कर ली !..." गम्भीर स्वर में बोला सुफल—"अब वे इस संसार में नहीं रहे।"

"सुफल काका !..." नगीना ने कहा। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर उसके रक्तिम गालों पर आँसू बह चले।

"और पूछो, क्या पूछती हो ?...."

"ताऊ और ताई कैसे हैं ?" नगीना ने पूछा।

"कुँवर का नाम रटते-रटते ताई ने अपनी जिन्दगी समाप्त कर दी और ताऊ अब भी तड़प रहे हैं, दो-चार महीने में वे भी चल

देंगे ...तब देखें हम लोगों का कैसे बेड़ा पार होता है !...तुम्हें तो जो विष बोना था, वह बो ही दिया।"

"मैंने क्या किया सुफल काका !..." रोती हुई बोली नगीना।

"पूछती हो कि तुमने क्या किया ?..." तेज स्वर में सुफल बोला—"मुझसे सुनो...तुमने क्या किया है ?..."

और हाँफने लगा सुफल।

परन्तु रुका नहीं वह।

कहता गया—"तुम्हारे ही कारण आज मधुरिया गाँव जैसे रेगिस्तान बन गया है। तुमने अपने रूप का जादू फेंक कर कुँवर को पथभ्रष्ट किया....तुमने पुजारी की जान ली...तुमने ताई को मारा...तुमने ताऊ को तड़पने को विवश किया।"

"सुफल काका ! ..." नगीना भी उत्तेजित हो उठी—"मेरी जबान से, भरी पंचायत में कुँवर का नाम नहीं निकला था...मैंने घुटने टेक कर कुँवर से यह नहीं कहा था कि मेरी रक्षा करो, मेरे साथ चलो....मैं ताऊ से यह कहने नहीं गई थी कि मेरे साथ कुँवर को भी दण्ड दो...सब कुछ तुम लोगों ने किया और उल्टे यहाँ आकर मुझे दोष दे रहे हो ?....कुँवर के पतन का कारण मैं नहीं हूँ...स्वयं उसने अपने को गिराया और मुझे भी ले मिटा..."

"चाहे जो कुछ कहो तुम नगीना !...मगर मैं तो यही कहूँगा कि अगर तुम्हारे रूप में इतनी आग न होती तो कुँवर कभी न जलता और न तो नीरजा का सुहाग ही नष्ट होता...."

"नीरजा कौन ?...." आश्चर्य से पूछा नगीना ने।

"वही लड़की, जो उस कमरे में बैठी है।" बोला सुफल।

"कौन है वह ?..."

"कुँवर की बहू..."

'बहू !..." चौंक कर बोली नगीना—"क्या कुँवर की शादी हो चुकी थी ?..."

"नहीं !....होने वाली थी मगर तुमने नीरजा के सिन्दूर में

ज्वाला उत्पन्न कर दी–आज वह तड़प रही है, रो रही है, तुम्हारी लगाई लपटों के बीच जल रही है और असहाय होकर तुम्हारे दरवाजे पर भीख माँगने आई है..."

"भीख ?..." नगीना की उत्तेजना विलीन हो गयी थी और मुख पर करुणा का भाव आ गया था।

"हाँ ! वह अपने पति की भिक्षा चाहती है नगीना !"

"सुफल काका ! एक नारी, दूसरी नारी को क्या भीख दे सकती है ?....हम दोनों ही तो असहाय हैं ..."

"नीरजा तुम्हारे पास आई है नगीना !..." सुफल ने कहा–"चाहो तो उसे ठोकरें मारकर बाहर निकाल दो....चाहो तो उसकी माँग फिर से सिन्दूरी कर दो !"

"बड़ी कठिन परीक्षा लेने आये हो तुम सुफल काका !"

"परीक्षा ही समझ लो तुम इसे ...मगर जरा उस कमरे में चलकर नीरजा की दशा तो देखो...वह तुमसे कम सुन्दर नहीं थी। भँवरे को पाकर एक कली खिल उठी और उसे खोकर दूसरी मुर्झा भी गई !..."

"चलो काका ! नीरजा के पास चलें..."

दोनों उस कमरे में आये।

नीरजा ने आँखों में ऐसी करुणा भरकर नगीना की ओर देखा कि उसका नारी-हृदय वेदना से कराह उठा।

उसने आगे बढ़कर नीरजा को गले से लगा लिया।

नगीना की सहृदयता देखकर नीरजा पानी सी बह चली। नेत्रों से बरबस ही आँसू ढुलक पड़े।

असीम प्यार से नगीना ने आँख के उन मोतियों को पोंछा।

बोली–"मुझे क्षमा करना बहिन !...नहीं जानती थी तुम्हारे विषय में, नहीं तो तुम्हारा सुहाग लूटने का साहस न करती...अब भी तुम्हारा सुहाग लौटा दूँगी बहन !...तुम हँसो...अपनी आँखों से हँसी के आँसू बिखेरो....हँसो नीरजा बहन ? हंसो तुम..."

"नगीना बहन !..." कहकर नीरजा रोती-रोती भी हँस पड़ी।

और उस हँसी को देखकर नगीना स्वयं करुणा से भरकर रो उठी। आज उसने युग-युग से संचित अपनी निधि, दूसरे के हाथों सौंप दी थी।

बाहर कोई अलबेला गा उठा—

मुहब्बत दो तरह, दो रंगों में उनवाने हस्ती है।
मेरी आँखों में आँसू है, तेरी आँखों में मस्ती है॥

"मुझे दोष मत देना नीरजा बहन !..." बोली नगीना तरल स्वर में—"मेरी पूरी कहानी सुन लो और तब चाहो तो मुझे दण्ड दे सकती हो !...."

नगीना अपनी कहानी सुनाने लगी।

सुफल और नीरजा स्तब्ध होकर बैठे रहे।

कहानी सुनाकर बोली नगीना—"कुँवर की याद एकदम नष्ट हो गई थी....उनके मस्तिष्क का आपरेशन हुआ है। सात दिनों से वे अस्पताल में हैं...इस बीच डाक्टर ने मुझे उनसे मिलने न दिया ...डाक्टर का विश्वास है कि उनका आपरेशन सफल होगा.... आज पट्टी खुलेगी और हम लोग कुँवर से मिल सकेंगे !...."

"तो कब चलोगी बेटी अस्पताल !" सुफल ने भींगे स्वर में पूछा।

"थोड़ी ही देर में चलूंगी...तब तक तुम लोग नाश्ता कर लो !..."

एक घण्टे के बाद तीनों अस्पताल आये।

वहाँ शरद और रजनी पहले से ही उपस्थित थे। उन्हें मालूम था कि आज अमर की पट्टी खुलेगी।

नगीना ने शरद और रजनी से, सुफल और नीरजा का परिचय कराया।

नीरजा से मिलकर रजनी अत्यन्त प्रसन्न हुई।

जब पट्टी खुलने का समय आया तो अंग्रेज डाक्टर बोला—

"उनके कमरे में सिर्फ एक आदमी चले; ताकि उनके दिमाग पर ज्यादा जोर न पड़े..."

डाक्टर के पीछे-पीछे नगीना ने उस कमरे में प्रवेश किया; जिसमें अमर था।

कमरा ज्यादा बड़ा न था। दीवारों तथा छत पर हलका रंग किया हुआ था।

खिड़कियाँ बन्द थीं। शीशों पर वार्निश की हुई थी ताकि तेज रोशनी कमरे में न आ सके।

एक ऊँचे स्ट्रेचर पर उदय लिटाया हुआ था। वह होश में था परन्तु उसकी आँख और सर पर सफेद पट्टी बँधी हुई थी।

डाक्टर ने धीरे से नगीना से कहा—"आप इनका असली नाम लेकर पुकारिये !..."

नगीना ने धड़कते दिल से पुकारा—"कुँवर !..."

"क्या है ? कौन है ?...यह मैं किसकी आवाज सुन रहा हूँ ?...." बोला अमर।

धीरे से डाक्टर बोला, हर्षमिश्रित स्वर में—"मैं कामयाब हो गया...इनकी यादाश्त लौट आई...."

"मेरी पट्टी खोलिये डाक्टर साहब !..." अमर ने पुनः कहा।

डाक्टर ने धीरे से पट्टी खोली।

अमर की आँखें बन्द थीं—धीरे से उसने खोला।

नगीना पर उसकी दृष्टि पड़ी।

"कुँवर...." अपने को सँभाल न सकने के कारण नगीना ने आगे बढ़कर उदय को अपनी कोमल बाँहो में भर लिया।

"नगीना ?....मेरी नगीना !...." उदय बोला—"मैं अब एकदम ठीक हूँ ...मेरी भूली हुई याद वापस लौट आई...मगर ...मगर" कहते-कहते उदय की आवाज शिथिल पड़ गई।

अपने बदन से लिपटी हुई नगीना को उसने हाथ पकड़कर अलग कर दिया। आँखें मूँदकर कुछ सोचने लगा वह।

"कुँवर !...क्या हुआ तुम्हें ?...." पूछा नगीना ने भयभीत स्वर में ।

"तुम दूर रहो मुझसे !...." कठोर स्वर में बोला उदय—"मुझे मत छुओ...मत छुओ...."

"उदय !"

"मुझे सब याद है..." हाँफता हुआ बोला उदय—"तुमने अपने को पतित बना डाला है....तुम वेश्या हो...कुलटा हो..."

"कुँवर !...मेरे कुँवर ! ऐसा न कहो तुम !....मैं तुम्हारी हूँ, अब भी तुम्हारी हूँ..." रो पड़ी नगीना ।

"मैं भूल नहीं सकता...सब याद है मुझे...बाजार में बैठकर नाचती-गाती थी तुम...सैकड़ों-हजारों खरीददार थे तुम्हारे...सारा शहर दीवाना था तुम पर...चली जाओ नागिन !...मेरी आँखों के आगे से अभी दूर हो जाओ तुम...नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा ।"

"कुँवर ! मुझे दूर भले ही कर दो...मगर मेरे आँचल पर धब्बा न लगाओ..."

"तुमने स्वयं अपने हाथों धब्बा लगाया है...तुम्हारा मुख कलंक से काला पड़ गया है...तुम्हारे गोरे मुख के पीछे जहर की थैली मैं साफ देख रहा हूँ...तुम नागिन हो....दूर हो जाओ... नीरजा ! तुम कहाँ हो ?....कहाँ हो नीरजा तुम ?..." चिल्लाया उदय और उसने आवेश से अपनी आँखें मूंद ली ।

शरद, रजनी, सुकुल तथा नीरजा, जो बाहर बैठे हुए थे, उदय की चीख सुनकर दौड़े आये ।

उदय आँखें मूंदे हाँफ रहा था ।

"उदय बाबू !...." शरद ने पुकारा ।

उदय ने नेत्र खोल दिये । बोला—"मुझे बचाओ शरद भाई ! इस नागिन से मुझे बचाओ...."

"तुम यहाँ से हट जाओ नगीना ?..." शरद ने मुलायम स्वर में कहा ।

और आँखों से आँसू पोंछती हुई नगीना बाहर चली गई।

"उदय, देखो तो यह कौन है..." शरद ने नीरजा की ओर इशारा करते हुए कहा।

उदय ने देखा तो हर्ष से चिल्ला उठा—"नीरजा!"

"......"

और नीरजा दौड़ पड़ी उदय की ओर। चाहा उसने कि बिछुड़े हुए उदय को कसकर कलेजे से लगा ले।

परन्तु परिस्थिति का ध्यान करके स्ट्रेचर के पास पहुँचकर खड़ी हो गई।

हाथ मलने लगी वह। आँखें नीची थीं। छातियाँ धड़क-धड़क कर उठ बैठ रही थीं।

उदय ने नीरजा का हाथ पकड़ लिया।

बोला—"मुझे क्षमा करना नीरजा!...मैं भूल गया था सब कुछ, आज तुम्हें पा सका, तुम्हें पहचान सका..,यह केवल शरद भाई के कारण...अरे सुफल काका! तुम भी आये हो?..."

सुफल अब तक भूला-भूला-सा खड़ा था। उदय की पुकार सुनकर वह चौंक पड़ा, जैसे आकाश से टूटकर जमीन पर गिर पड़ा हो।

"कुँवर बेटा!..." बूढ़े सुफल ने लपककर उदय को अपनी ठूठी ठठरी से बाँध लिया। आँखों से सावन बह चला।

वह मिलन कितना आनन्दकारक था—वातावरण आँसुओं से भींग गया था परन्तु फिर भी आनन्द से हँस रहा था।

"ताऊ कैसे हैं सुफल काका!..." पूछा उदय ने।

"जी मर रहे हैं बेटा...." सुफल अपना रुदन रोकना चाहता था परन्तु असफल हो रहा था अपने प्रयत्न में।

"और ताई?..."

"......"

अब सुफल फूट पड़ा। रोने लगा। हिचकियाँ बँध गईं।

"ताई कैसी हैं काका ?...बोलो न...बोलते क्यों नहीं ?..."
उदय, सुफल के रोने से विचलित हो गया था।

उसी समय डाक्टर ने सुफल का कन्धा धीरे दबाया।

बूढ़ा सुफल समझ गया कि इस समय ताई की मृत्यु का समाचार उदय के मस्तिष्क में तूफान उठा देगा।

अत: वह बोला—"ताई भी अच्छी हैं बेटा !...."

"तुम रो क्यो रहे हो ?...." उदय ने पूछा।

"बुढ़ापे में रोना ही तो बदा था कुँवर बेटा !....नहीं तो तुम खुद ही रुलाकर खुद कारण न पूछते !..."

उसी दिन डाक्टर ने उदय को अस्पताल से छुट्टी दे दी।

सब बाहर आये।

किसी ने यह नहीं सोचा कि निराशा के थपेड़े खाकर नगीना किधर गई ?

रजनी को याद अवश्य पड़ा परन्तु उसने सोचा शायद वह अपने घर चली गई हो।

सब लोग शरद के घर आये।

नौकर ने एक पत्र और एक अंगूठी शरद के हाथों पर रख दिया !

'कौन दे गया है ?...." शरद ने पूछा।

"एक नौकरानी दे गई है...." बोला नौकर।

शरद ने देखा—पत्र उदय के नाम था। अँगूठी सोने की बनी थी। सफेद नग पर मीनाकारी द्वारा एक नागिन का चित्र बना हुआ था। बहुमूल्य अँगूठी थी वह।

शरद समझ गया कि इसे नगीना ने अपने स्मृति-स्वरूप उदय के लिए भेजा है।

उसने वह पत्र और अँगूठी उदय को दे दी।

उदय ने पत्र खोला। केवल चन्द लाइनें लिखी हुई थीं—

मैं हूँ कितनी पास पिया के, फिर भी कितनी दूर।
एक नदी के दो किनारे, मिलने से मजबूर॥

उदय ने घृणा से वह कागज मरोड़ डाला और उसे फाड़ना ही चाहता था कि रजनी ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया।

बोली—"इसे रख लो उदय! जेब में रख लो इसे..."

और उसने स्वयं ही वह कागज और अंगूठी लेकर उदय की जेब में डाल दिया।

उस दिन शरद के घर पर खूब चहल-पहल रही।

शाम को खाना खाते समय उदय बोला-"मैं कल घर जाना चाहता हूं शरद भाई!....ताऊ को देखे बहुत दिन हो गये हैं...."

"जाओ न!..."प्यार भरी आवाज में बोला शरद—"तुम्हें रोकता कौन है? अब तो तुम पागल रहे नहीं जो तुम्हें अपना भाई बनाकर रोक रखूं..."

"तुम क्या कहती हो भाभी!...." उदय ने रजनी से पूछा।

"मैं क्या कहूं?..."

"घर जाऊं कि नहीं?...."

"भला अब भी घर न जाओगे?...." हंसकर बोली रजनी—"नीरजा ने तुम पर आते ही जादू कर दिया है न?..."

सब हँसने लगे।

भोली नीरजा शर्म से गड़ गई।

दूसरे दिन सब स्टेशन पर खड़े थे। शाम हो गयी थी। बिजली के लट्टू हँस रहे थे।

उदय, सुफल और नीरजा जा रहे थे। शरद और रजनी उन्हें पहुँचाने आये थे।

ट्रेन आई और उदय आदि सेकिण्ड क्लास के डिब्बे में चढ़ गये।

"भूलना मत उदय! शादी में हमें जरूर बुलाना...." बोला शरद।

"तुम खुद चले आना शरद भाई! शायद मैं बुलाना भूल जाऊं..." हँसकर उदय ने कहा।

"अभी तक तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं हुआ क्या ?"
रजनी ने पूछा।

"दिमाग ठीक रहता तो तुम जैसी भाभी और शरद जैसे भाई को छोड़कर यहाँ से भागता ही क्यों ?..."

"ठीक कहते हो तुम...मगर घर जाकर नीरजा तुम्हारा दिमाग ठीक देगी..." बोली रजनी।

"जरा अभी से गृहस्थी का कायदा-कानून इन्हें समझा दो भाभी !" नीरजा की ओर देखते हुए उदय ने रजनी से कहा।

"सब समझा दिया है इन्हें...जरा बच के रहना घर पर..."
रजनी ने कहा।

डिब्बे में केवल ये ही लोग थे, जिससे वार्तालाप के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

नीरजा लज्जा से गड़ी जा रही थी—उन बातों को सुनकर।

उधर !...

स्टेशन के एक कोने में, मोटे से खम्भे की आड़ में खड़ी हुई नगीना, एकटक उस डिब्बे की ओर देख रही थी, जो आज उसकी आशाओं का आधार लूट ले जाने वाला था।

आंखें रह-रहकर भर आती थीं।

हृदय की ज्वाला भभक उठना चाहती थी।

चाहती थी नगीना कि जब रेलगाड़ी, उसके हृदय को लेकर चलने लगे, तो वह दौड़कर इंजन के आगे लेट जाय और उसका सारा शरीर पिसकर, टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाय उस निष्ठूर के सामने।

परन्तु नगीना ने अपनी उत्तेजना को रोका।

गम के तीर खाकर मर जाय तो क्या ?

खुशी के आलम से हंसते-हंसते पागल हो उठे तो क्या !

इसमें मजा ही क्या ?...ऐसा तो सभी करते हैं।

दुख में आँसू सभी बहाते हैं—सुख में हंसी सभी बिखेरते हैं।

परन्तु साहसी वही है, जो दुख में हंसे और सुख में पागल न बने।

तो नगीना मरेगी नहीं।

वह अपनी जान नहीं देगी।

वह जलेगी—लपटों में अपनी हड्डियों का चिड़चिड़ाना देखेगी—ज्वाला में, अपने खून-मांस के शरीर को राख का ढेर होता हुआ देखेगी—

देखेगी वह—

और जीवित रहेगी।

गाड़ी ने सीटी दी। तेज सीटी नगीना के कोमल कलेजे को भाले-सी भेदती हुई जैसे पार निकल गई।

वह चाहती थी कि गाड़ी वहीं युग-युग तक खड़ी रहे, उदय उसी डिब्बे में बैठा रहे और वह उसी खम्भे से लगी एकटक देखा करे....देखा करे।

गाड़ी सरकने लगी।

नगीना के गाल आंसू से तर थे। उसने उन्हें पोंछ डाला।

रजनी और शरद पीछे रह गये, प्लेटफार्म पर।

उदय का डिब्बा उस खम्भे के सामने आया। उदय पर एक क्षण के लिए उसकी दृष्टि पड़ी।

अगम वैकल्प से भरकर नगीना ने अपनी धड़कती छाती पर हाथ रख लिया, जैसे उसका कलेजा छिटककर जमीन पर गिर पड़ना चाहता हो।

उदय ने उसे देखा और घृणा से भरकर अपनी आंखें फेर लीं।

गाड़ी चली गई, चलती गई—

नगीना खड़ी रही। गाड़ी आंखों से ओझल हुई तो उसका हृदय हाहाकार कर उठा।

वह दौड़कर रेल की पटरियों पर लोटने लगी—चूमने लगी उन्हें, जैसे चुम्बन के उस आकर्षण से वह उदय का डिब्बा पीछे खींच लायेगी।

घनीभूत अन्धकार में उस निराश प्रेमिका का वह पागलपन किसी ने देखा नहीं !

प्लेटफार्म पर टहलता हुआ कोई व्यथित गा रहा था—

जो हम पै गुजरती है, सितारों से पूछिये ।

उन छोटे-छोटे रात के प्यारों से पूछिये ॥

बेचैन इस तरह से मैं रहती हूँ रात-दिन—

बादल में बिजलियों के इशारों से पूछिये ।

जो ढूंढ़ते हैं चांद को अन्धेरी रात में—

उन बदनसीब दर्द के मारों से पूछिये ॥

दर्द भरे स्वर का कम्पन हवा पर तैर रहा था । जैसे रेल की पटरियाँ भी कांप रही थीं, वैकल्य से भरकर ।

• •

कहानी का अन्त आते-जाते मेरे नेत्र गीले हो गये ।

और ठाकुर साहब तो पहले से ही रो रहे थे । नगीना को उन्होंने ठुकराया था परन्तु उसे भूल नहीं सके थे ।

अब भी उनके आंसुओं के बीच नगीना का सौन्दर्य चमक रहा था ।

वही नगीना —

जो आजकल पागल होकर प्लेटफार्म पर पड़ी रहती है और अपने को नागिन कहती है ।

ठाकुर साहब की जवानी के वे दिन कितने हलचल भरे थे ?

"सुन चुके नऽ !..." पूछा उन्होंने ।

"हां !..." मैंने कहा ।

"जाओ, रमा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी !...."

मैं बाहर आया ।

देखा, रमा कुर्सी पर बैठी हुई कोई पुस्तक पढ़ रही है ।

मुझे देखकर बोली—

"आ गये आप ?....क्या बातें कर रहे थे पिताजी से !"

"कुछ तो नहीं....इधर-उधर की बातें हो रही थीं।"

"छिपाते क्यों हैं मुझसे ?...."

"छिपाता तो नहीं हूं रमा !...." बोला मैं !

"अच्छा, यह तो बताइये कि आँखें आपकी गीली क्यों हैं ?"

चौंक पड़ा मैं।

कहने लगा "एक कहानी सुन रहा था रमा !...."

"और पिताजी सुना रहे थे !"

"हाँ...."

"कौन-सी कहानी है ?"

"घबड़ाओ नहीं..." मैंने कहा—"शीघ्र ही उपन्यास रूप में छप कर तुम्हें मिल जायगी तो पढ़ लेना...."

इस बार रमा ने हठ नहीं किया।

× × ×

आज "नागिन" की प्रति हाथ में लिए सोच रहा हूं कि इसे रमा को दूं या नहीं ?

पढ़कर शायद वह रो दे....और उसके आँसू देख सकने की क्षमता मुझमें है नहीं।

यही सब सोचता हुआ मैं घर की ओर बढ़ा जा रहा हूँ।

हाथ में "नागिन" है मगर डँसने का डर जरा भी नहीं है।

बस

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार

कुशवाहा कान्त

द्वारा

लिखित उपन्यास

लाल रेखा

जंजीर

लाल किले की ओर

विद्रोही सुभाष

नागिन

पपिहरा

पारस

मदभरे नयना

जवानी के दिन

हमारी गलियाँ

उसके साजन

गोल निशान

काला भूत

रक्त मन्दिर

परदेसी

पराया

पराजिता

उड़ते-उड़ते

प्राप्ति स्थान—

चिनगारी प्रकाशन

सीके, ६४/५ जालपादेवी रोड, कबीरचौरा

वाराणसी–२२१००१



स्वर्गीय कुशवाहा कान्त के उपन्यासों ने हिन्दी कथा-साहित्य में लोकप्रियता का अभूतपूर्व मानदण्ड स्थापित किया है।

उनके देहावसान के उपरान्त भी वह मानदण्ड पूर्ववत् आज भी मील का पत्थर बना हुआ है।



भारत पॉकेट बुक्स